आज़ाद हिंद फ़ौज की कहानी

हिमाचल प्रदेश के स्कूलों में नवीं कक्षा के
विद्यार्थियों के लिए निर्धारित पुस्तक ।

तरुण भारती

आज़ाद हिंद फ़ौज की कहानी

एस.ए. अय्यर

अनुवाद
प्रेम चंद आर्य

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय-सूची

(सारे चित्र नेताजी रिसर्च ब्यूरो से साभार)
आवरण भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित डी.के राय की पुस्तक 'द मैन' से लिया गया है।

1. युग पुरुष

द्वितीय विश्व युद्ध के समय 17 जनवरी 1941 की पूर्व बेला में अपने कलकत्ता स्थित घर से नाटकीय ढंग से पलायन एवं दस सप्ताह पश्चात् जर्मनी आगमन सुभाष चंद्र बोस के जीवन की अनेक घटनाओं में से एक महत्वपूर्ण घटना है। अपने अंग्रेज शासकों को आमरण अनशन का भय दिखाकर उन्होंने दिसंबर 1940 में कारागार से मुक्ति पाई। तत्पश्चात अपने एलगिन रोड स्थित घर के एक कमरे में कुछ सप्ताह एकांत वास किया और मिलने वाले व्यक्तियों से भेंट करना वर्जित कर दिया। इस अवधि में उन्होंने अपनी दाढ़ी पर्याप्त बढ़ा ली। अब बढ़ी हुई दाढ़ी में और बिना चश्मा पहने उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था।

अंग्रेज शासकों का गुप्तचर विभाग बहुत सर्तकता से, यहां तक कि उनके घर के आस-पास पेड़ों पर चढ़कर रात-दिन उनकी निगरानी कर रहा था। उन सबकी आंखों में धूल झोंक कर मौलवी की वेशभूषा में सुभाष एक कार में बैठकर रात्रि के अंधकार में घर से बाहर निकल गये। उनका भतीजा शिशिर कुमार बोस कार चलाकर उन्हें कलकत्ता से दो सौ मील दूर स्थित गोमोह रेलवे स्टेशन ले गया। गोमोह उन्हें इस कारण जाना पड़ा क्योंकि कलकत्ता के आस-पास स्थित अन्य स्टेशनों पर गुप्तचरों द्वारा बड़ी सतर्कता से उनकी निगरानी की जा रही थी। गोमोह में उन्होंने पेशावर के लिए गाड़ी पकड़ी और यात्रा के दौरान अपने आपको किसी कार्यवश पेशावर जाने वाला एक बीमा एजेंट बताया। सुभाष और उनका एकमात्र हिन्दू साथी अफ़गानिस्तान और भारत के मध्य स्थित जनजातियों के क्षेत्र को पार करते हुए पेशावर से काबुल पठान की वेशभूषा में पहुंचे। इस सीमा क्षेत्र में पासपोर्ट और चुंगी आदि अवरोधों से बचने के लिए उन्हें टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चलने में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन सब कठिनाइयों को सहन करते हुए अफ़गानिस्तान की शीत ऋतु में संध्या समय, जबकि तापमान हिमांक पर था, वे बहुत थके हुए काबुल जा पहुंचे।

काबुल प्रवास के समय उनके साथी ने उन्हें अपना मूक और बधिर भाई जिसे वह तीर्थ-यात्रा पर ले जा रहा था बताया। वहां उन्होंने अपने प्रवास के अंतिम दिनों में पठानों की वेशभूषा अपनाई जिससे कि बाजार में वहां के नागरिकों का ध्यान

उनकी ओर आकृष्ट न हो और उन्हें कोई पहचान न सके। दो मास की अनिर्वचनीय कठिनाइयों, गोपनीयता, दुविधा, चिंता, शारीरिक कष्ट और मानसिक क्लेश के पश्चात् वे 1941 की अप्रैल के प्रारंभ में मास्को होते हुए सुरक्षित बर्लिन पहुंचे।

सुभाष चंद्र बोस का भारत से यह रोमांचकारी निर्गमन योजनाबद्ध था। इसे भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण मोड़ कहा जा सकता है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अन्य देशों की सशस्त्र सहायता बिना भारत भूमि से अंग्रेजी शासन नहीं हटाया जा सकता। यही उनकी सुनिश्चित कूटनीति थी। इसी कूटनीति के अनुकूल उन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने की योजना अपने अंत: मन में बनाई। सामयिक अंतर्राष्टीय परिस्थियों के अनुसार उन्होंने अपनी योजना में परिवर्तन किये परंतु उनकी मूल नीति अपरिवर्तित रही। वे रूस से ही कार्य आरंभ करना चाहते थे परंतु व्यावहारिक होने के नाते उन्होंने अपना कार्य जर्मनी से ही आरंभ करके संतोष किया। उन्होंने बर्लिन में आज़ाद हिंद केन्द्र की स्थापना की और जर्मन भूमि पर आज़ाद हिंद फौज आयोजित की। उनका यह कार्य उनकी पूर्व एशिया में भावी महान उपलब्धियों का पूर्वाभ्यास था। 1943 में जर्मनी से पनडुब्बी द्वारा 90 दिन तीव्र समुद्री यात्रा करके वे जापान पहुंचे। जापान सरकार द्वारा उन्हें सब प्रकार की सहायता का पूर्ण आश्वासन प्राप्त हुआ। उन्होंने पूर्व एशिया में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया तथा आज़ाद हिंद फौज की बागडोर सम्भाली और भारत-बर्मा के पार मुक्ति सेना की अगुवाई की। आज़ाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) ने 18 मार्च 1944 को सीमा पार करके मनीपुर में मोरांग स्थान पर 14 अप्रैल को तिरंगा फहराया। तत्पश्चात बर्मा में भारी वर्षा के कारण आई.एन.ए. के कार्य क्षेत्र में भारी बाढ़ आ गई और इस कारण भारतीय सेना की सफलता विफलता में बदल गई। रसद मिलना बंद हो गई। ऐसी स्थिति में आई.एन.ए. के सैनिकों ने प्रत्यावर्तन करना आरंभ किया। सैनिकों में मलेरिया और पेचिश का रोग फैल गया। शत्रु सेना आई.एन.ए.की पंक्ति को पार करके रंगून की ओर बढ़ने लगी। अप्रैल 1945 में नेताजी रंगून से सिंगापुर चले गये। अगस्त मास में जब युद्ध समाप्ति की घोषणा हुई वे सिंगापुर से सैगोन पहुंचे। और वहां अपनी अंतिम यात्रा के लिए एक लड़ाकू विमान में सवार हुए। पूर्व एशिया में आई.एन.ए. के सैनिकों को अंग्रेज बंदी बनाकर भारत ले आये और उन पर लाल किले में ऐतिहासिक अभियोग चलाया। इस मुकदमें के कारण जो देशव्यापी हलचल हुई उससे अंग्रेजों के मन में घबराहट पैदा हो गई और अंत में उन्होंने भारत छोड़ने का निश्चय किया और 15 अगस्त 1947 को उन्होंने भारत छोड़ दिया। सिंगापुर छोड़ते समय 15 अगस्त 1945 को आई.एन.ए. के सुप्रीम कमांडर सुभाष चंद्र बोस ने अपने अंतिम दैनिक आदेश में सैनिकों से कहा, "दिल्ली

पहुंचने के अनेक रास्ते हैं और दिल्ली अभी भी हमारा अंतिम लक्ष्य है।" उन्होंने इस विश्वास के साथ अपना आदेश समाप्त किया कि "भारत आजाद होगा और जल्दी ही आज़ाद होगा।"

15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हुआ परंतु साथ-साथ देश का विनाशकारी विभाजन भी हुआ।

2. बचपन और विद्यार्थी जीवन

उड़ीसा के प्रसिद्ध नगर कटक में 23 जनवरी 1897 को पिता जानकी नाथ और माता प्रभावती बोस के घर सुभाष का जन्म हुआ। वे उनकी नवीं संतान एवं छठे पुत्र थे। सुभाष के परिवार में कुछ परंपरागत मान्यताएं थी। सत्ताईसवीं पीढ़ी में उत्पन्न उनके पूर्वज दशरथ बोस ने दक्षिणी बंगाल (दक्षिण रहड़ी) में बोस उप-जाति की नींव डाली। उनके परिवार का एक सदस्य कलकत्ता के निकट महीनगर में निवास करने लगा। इसलिए वहां रहने वाले परिवार के सदस्य महीनगर के बोस कहलाये। उनके एक पूर्वज महिपति तत्कालीन बंगाल के राजा के वित्त और युद्ध मंत्री थे। एक और पूर्वज गोपी नाथ बाद के शासक के वित्त मंत्री एवं नौ सेना के कंमाडर थे। हर नाथ के चार पुत्र थे जिनमें सबसे छोटे पुत्र जानकी नाथ सुभाष चंद्र के पिता थे।

उनकी माता प्रभावती उत्तरी कलकत्ता में हथरोला के दत्त परिवार की कन्या थीं। उनका परिवार कन्याओं के लिए सुयोग्य वर चयन करने के लिए प्रसिद्ध था। प्रभावती के पिता ने जानकी नाथ की कठिन परीक्षा ली और इस परीक्षा में उनके सफल होने पर ही अपनी स्वीकृति दी।

जानकी नाथ की शिक्षा कलकत्ता और कटक में हुई और 1885 में उन्होंने कटक में वकालत आरंभ की। 1912 में जानकी नाथ बंगाल विधान सभा के सदस्य बने और उन्हें रायबहादुर की उपाधि मिली। जिलाधीश से मतभेद हो जाने के कारण जानकी नाथ ने सरकारी वकील और जन अभियोक्ता के पदों से त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात उन्होंने सरकारी दमन नीति के विरोध में रायबहादुर की उपाधि भी त्याग दी। जानकी नाथ कटक की शिक्षा संस्थाओं एवं सामाजिक संस्थानों के कार्यों में सक्रिय रुचि लेते थे। वे मुक्तहस्त से दान देते थे। दान का अधिकांश भाग निर्धन और अभावग्रस्त विद्यार्थियों को जाता था। भारत की प्रमुख राजनैतिक संस्था भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में वे अवश्य भाग लेते थे। परंतु वे संस्था के सदस्यों के विचार-विमर्श में सक्रिय भाग नहीं लेते थे। जब महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन आरंभ किया तो जानकी नाथ बोस ने राष्ट्रीय शिक्षा और खादी के कार्यक्रमों में रचनात्मक सहयोग दिया। उनकी मनोवृत्ति धार्मिक थी। निर्धनों के

प्रति उनके हृदय में दयाभाव रहता था। स्वर्गवासी होने से पूर्व उन्होंने अपने आश्रितों और वृद्ध अनुचरों के लिए पर्याप्त साधनों की व्यवस्था कर दी थी।

विकासोन्मुख बालक सुभाष के लिए कटक का वातावरण बहुत अनुकूल था। उनका परिवार मध्यवर्गीय संपन्न परिवार था, परन्तु उनके माता-पिता बच्चों के लालन-पालन में सादा जीवन के सिद्धांत का पालन करते थे। परिवार में आठ भाई-बहन बड़े और पांच छोटे होने के कारण सचेतन सुभाष पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा। वे स्वयं को नगण्य और कभी-कभी अपने को एकाकी अनुभव करते थे। कभी-कभी उनको इतने बच्चों के बीच अस्तित्वहीनता की अनुभूति होती थी। ज्येष्ठ भाई-बहनों के समकक्ष पहुंचना उनके लिए एक चुनौती थी। वे अपने माता-पिता के अत्यधिक सान्निध्य के इच्छुक रहते थे। परंतु उनके पिता स्वभाव से एकांतवासी थे और माता गृहस्थी के क्रियाकलापों में व्यस्त रहती थी।

एक बड़े परिवार में पालन-पोषण होने के कारण उनका मन तो निश्चय ही विशाल हो गया था परंतु उनके स्वभान में एकाकीपन आ गया और कुछ शर्मीले हो गये। उनकी स्वभावगत यह विशेषता जीवन-पर्यंत रही।

पांच वर्ष की आयु में सुभाष ने कटक में एक अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश लिया। इस संस्था का संचालन यूरोपीय प्रणाली के अनुसार होता था। शनैः-शनैः सुभाष को दो विभिन्न संसारों का परिचय हुआ—एक तो उनके भारतीय घर और समाज में प्रतिबिंबित था दूसरे का प्रतिनिधित्व उनका स्कूल करता था, जिसका दृष्टिकोण इंग्लैंड के जीवन के समीप था। स्कूल में उनको जातीय भेदभाव का भी अनुभव हुआ क्योंकि वहां एंग्लो-इंडियन बच्चों को जो सुविधा उपलब्ध थी वह भारतीय विद्यार्थियों को प्राप्त नहीं थी। कुछ दिन पश्चात उन्हें एक भारतीय विद्यालय में प्रविष्ट किया गया जहां पर संस्था के प्रधान बेनीमाधव का प्रभाव उस अल्पायु में उन पर अत्यधिक पड़ा। यह विद्यालय भारतीय जीवन प्रणाली के अनुसार संचालित होता था। अब सुभाष अध्ययन मे व्यस्त रहने लगे और खेल-कूद और अन्य शारीरिक व्यायाम त्यागने लगे। फलतः उनमें समय से पहले प्रौढ़ता आने लगी।

सुभाष के मन में गंभीर अंतर्द्वंद्व उठने लगे। वे अपने जीवन का लक्ष्य निधारित नहीं कर पा रहे थे। अपने माता-पिता के प्रति उनके दृष्टिकोण में महान अंतर आ गया और अब वे उनकी आज्ञा का अनुपालन बिना सोचे समझे नहीं करते थे। कभी-कभी तो उनके मन में आज्ञा उलंघन की भावना भी जाग्रत हो जाती थी। उनका समय दीर्घकालीन सैर और सम विचार के युवकों के साथ विचार-विमर्श में अधिक व्यतीत होता था।

सुभाष अभी केवल 15 वर्ष के ही थे जब उन पर दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव स्वामी

विवेकानंद और उनके स्वामी रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा का पड़ा। स्वामी विवेकानंद से उन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की कि मानव जाति की सेवा ही देश सेवा है और स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उन्होंने अध्यात्मिक जीवन के लिए वासना और स्वर्ण के परित्याग का भाव ग्रहण किया।

इन दोनों महापुरुषों की शिक्षाओं ने किशोर सुभाष के अंदर आध्यात्मिक आंदोलन उत्पन्न कर दिया।

अंततोगत्वा सुभाष को मार्ग मिला। उनका अंतर्द्वंद्व समाप्त हुआ और उनकी आत्मा में एक नवीन आदर्श का प्रकाश उदय हुआ। वे सांसारिक एषणाओं का परित्याग करके मोक्ष प्राप्त करने चाहते थे। ऐसी स्थिति आ गई कि उनके माता-पिता उन पर जितने प्रतिबंध लगाते उतना ही अधिक वे उनका विरोध करते। अब वह साधुओं का सान्निध्य प्राप्त करने, योगाभ्यास करने एवं आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विमर्श करने में अधिक रुचि लेते थे।

सोलह वर्ष की अवस्था में सुभाष ने ग्रामों में पुनर्निमाण कार्य करने का अनुभव प्राप्त किया। अपने विद्यार्थी जीवन में सुभाष ने राजनीतिक परिपक्वता का परिचय नहीं दिया था क्योंकि उनका झुकाव उस समय दूसरी दिशा में था। वे अपने बड़े भाइयों से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संबंध में बहुधा सुनते थे परंतु इसका उन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता था। वास्तव में उनके घर में राजनीति बच्चों के लिए परहेज की वस्तु समझी जाती थी परंतु उनके भाइयों ने अपने कमरों की दीवारों पर क्रांतिकारियों के चित्र लगा रखे थे।

अपने विद्यार्थी जीवन के अंतिम दिनों में उनकी धार्मिक मनोवृत्ति और अधिक तीव्र हो गई। इस कारण उनके लिए पाठ्य विषयों के अध्ययन का महत्व कम हो गया। धर्म और योग में निष्ठा के कारण वे अपने कार्य और दैनिक परिचर्या में स्वतंत्रता चाहते थे। अत: वे अपने माता-पिता के आदेशों का विरोध करने लगे। आज्ञा उलंघन का एक कारण यह भी था कि विवेकानंद की शिक्षा के अनुसार उन्हें यह विश्वास हो गया था कि विद्रोह के बिना आत्म-सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। अब वे उद्दंड, सनकी और जिद्दी प्रतीत होने लगे। अपने अध्ययन की उपेक्षा करना और विभूति रमाये साधुओं के पीछे दौड़ना उनकी परिचर्या बन गई थी। अत: उनके अभिभावकों ने सोचा कि उनके वातावरण में परिवर्तन उनके लिए लाभप्रद सिद्ध होगा। इसके लिए कलकत्ता का वातावरण अच्छा समझा गया।

सोलह वर्ष की आयु में 1913 में सुभाष ने मैट्रिक की परीक्षा कटक से उत्तीर्ण की और कलकत्ता विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। शीघ्र ही उन्हें कलकत्ता भेज दिया गया परंतु वे अपने भविष्य के संबंध में पहले ही निश्चय कर चुके थे।

घिसे पिटे सामान्य रास्ते पर चलना उनके जीवन का उद्देश्य नहीं था अपितु उनका आदर्श था स्वयं की आध्यात्मिक उन्नति और मानवता के कल्याण की प्रक्रिया में अपने को उत्सर्ग करना।

3. भारत और इंग्लैंड में कालेज जीवन

कालेज जीवन के प्रारंभ में ही सुभाष ने यह समझ लिया था कि मानव जीवन का कुछ विशेष अर्थ और उद्देश्य होता है जिसकी उपलब्धि मन और शरीर को नियमित अभ्यास द्वारा सुसंस्कृत करके एवं यथाशक्ति आत्म-नियंत्रण द्वारा हो सकती है। इन गुणों ने उन्हें जीवन-पर्यंत संबल दिया। कटक की जीवनचर्या में परिवर्तन की बात तो दूर रही, कलकत्ते में भी सनकी लड़कों का एक बड़ा समुदाय और कालेज में उनकी कक्षा का एक ग्रुप उनके विशुद्ध और सादे व्यवहार से आकृष्ट हुआ, परंतु अन्य लड़कों ने उनमें कोई सक्रिय रुचि नहीं दिखाई।

कालेज एक राजकीय संस्था थी परंतु उसमें शिक्षा ग्रहण करने वाला समस्त समुदाय के सर्वोत्तम विद्यार्थी होने के कारण राजभक्त नहीं था। स्वतंत्र चिंतन करने वाले इन विद्यार्थियों की ओर पुलिस का ध्यान आकृष्ट हुआ। पुलिस कालेज के छात्रावास को राजविद्रोह का अनुप्रेरक क्षेत्र एवं क्रांतिकारियों का निवास समझती थी। सुभाष के ग्रुप ने अपने को नवीन विवेकानंद ग्रुप के नाम से राष्ट्रीयता और धर्म में समन्वय स्थापित करने वाले समुदाय के रूप में प्रस्तुत किया। विवेकानंद की इस शिक्षा के अनुसार कि शिक्षा क्षेत्र में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण द्वारा समाज सेवा की जा सकती है सुभाष के दल ने अपनी योजना को क्रियान्वित करने से पूर्व ही उन सुयोग्य विद्यार्थियों की सूची बनाना आरंभ किया जो भावी जीवन में प्रशिक्षित आचार्य के रूप में कार्य करने को प्रस्तुत थे। ये विद्यार्थी आतंकवादी गतिविधियों एवं गोपनीय षड़यंत्रों के विरुद्ध थे। अत: वे उस समय बंगाल में व्याप्त आतंकवादी वातावरण में बहुत लोकप्रिय नहीं थे।

बंगाल के युवकों को अरविंद घोष ने बहुत प्रभावित किया था यद्यपि वे 1910 से पांडेचेरी में निष्कासित जीवन व्यतीत कर रह थे। सुभाष अरविंद की पत्रिका 'आर्य' को नियमित रूप से पढ़ते थे और उस रहस्यवादी के गहन दर्शन एवं उच्च भावना से बहुत प्रभावित हुए थे। सुभाष के मन पर अरविंद के इन सीधे-सादे शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा था "मैं तुममें से कुछ को महान व्यक्ति देखना चाहता हूं, स्वयं के लिए महान नहीं अपितु भारत को महान बनाने के लिए जिससे कि वह संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों में अपना मस्तक ऊंचा करके खड़ा हो सके। तुम में जो निर्धन

एवं नगण्य है उन्हें अपनी निर्धनता और नगण्यता ही मातृभूमि की सेवा में लगानी चाहिए। कार्य करो, जिससे मातृभूमि समृद्ध बने, उसकी खुशी के लिए कष्ट झेलो।"

सुभाष ने निर्धनों की सहायता के लिए घर-घर से दान लेकर और खाद्य-सामग्री एकत्र करके एक समाज-सेवी संस्था को सहयोग दिया और इस प्रकार स्वयं को समाज-सेवा योग्य प्रमाणित किया। कभी-कभी इस कार्य में उन्हें संकोच का अनुभव होता था। इस लज्जालु स्वभाव पर विजय पाने के लिए उन्हें पर्याप्त प्रयास करना पड़ा। उन्होंने विद्यार्थियों के कार्यक्रमों में, जैसे वाद-विवाद, बाढ़ और सूखा से पीड़ित जनता की सहायता हेतु धन एकत्र करना, एवं अधिकारियों से विद्यार्थियों के प्रतिनिधि के रूप में बातचीत करना आदि कामों में भाग लेना आरंभ किया। उन्होंने विद्यार्थियों की टोलियों में भ्रमण करने में भी अधिक रुचि ली और इस प्रकार अंतर्मुखी प्रवृत्ति से छुटकारा पाना आरंभ किया।

1914 के ग्रीष्मावकाश में वे यकायक कलकत्ता छोड़कर अपने माता-पिता को बिना सूचित किये तीर्थ-यात्रा पर निकल गये। उस समय उनकी आयु केवल 17 वर्ष की थी। वे आध्यात्मिक गुरु की खोज में ऋषिकेश, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन वाराणसी और गया गये। उन्हें इच्छानुकूल गुरु नहीं मिला और वे निराश होकर कलकत्ता लौट आये।

जब प्रथम विश्व-युद्ध आरंभ हुआ सुभाष टाइफाइड ज्वर से पीड़ित थे।

अब सुभाष में राजनैतिक चेतना का उदय होने लगा। स्वतंत्र रूप से कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए उन्हें दो बातों ने प्ररित किया। उनमें से एक थी प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति आम व्यवहार और दूसरी बात ट्राम, रेल और सड़कों पर भारतीयों के साथ धृष्टता एवं असभ्यता का बर्ताव करना। उन्होंने अपने सचेतन स्वभाव के कारण इन घटनाओं के विरोध में प्रत्याघात किया। जब भारतीयों ने कानून व्यवस्था अपने हाथ में ले ली तो उसका प्रभाव महत्वपूर्ण पड़ा। सुभाष ने देखा कि अंग्रेज शारीरिक बल का आदर करते थे और इस शक्ति को अच्छी प्रकार समझते थे। प्रथम विश्व-युद्ध को भी वे अच्छी प्रकार समझते थे। प्रथम विश्व-युद्ध से वे अच्छी प्रकार समझ गये कि सैनिक शक्ति के बिना कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकता।

सुभाष ने इंटर की परीक्षा 1915 में सम्मान सहित उत्तीर्ण की और बी.ए. आनर्स में दर्शनशास्त्र विषय लेकर प्रविष्ट हुए। आगामी वर्ष के प्रारंभ में ही एक घटना ऐसी घटी कि उन्हें कालिज से निलंबित कर दिया गया। एक अंग्रेज प्राध्यापक जिसका नाम ई.एफ. ओटन था भारतीय विद्यार्थियों के साथ सदैव असभ्यता का व्यवहार करता था। विद्यार्थियों के प्रतिनिधि के रूप में सुभाष ने प्रधानाचार्य से इसकी शिकायत

की। इस प्रकार कुछ समय के लिए विवाद शांत हो गया। परंतु फिर एक बार प्रोफेसर ने एक विद्यार्थी के साथ हाथापाई की। विद्यार्थियों ने बदले में कालिज की सीढ़ियों पर प्रोफेसर पर आक्रमण कर दिया। सुभाष आक्रमणकारियों में नहीं थे। वे केवल दूर के दृष्टा थे परंतु फिर भी उनको संस्था से निष्कासित कर दिया गया और उन्हें कटक में अपने माता-पिता के पास घर लौटना पड़ा। इस घटना ने सुभाष के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला और इसी से उन्होंने शहादत का प्रथम पाठ पढ़ा। उनके अभिभावकों ने उनकी स्थिति को समझकर सहानुभूति प्रकट की। यह बात उनके लिए आश्चर्य की थी। कालिज से हठात् अनुपस्थिति के समय उन्होंने अपने को आध्यात्मिक एवं सामाजिक कार्यों में लगाया।

अगले वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय के वास्तविक एकमात्र शासक आशुतोष मुखर्जी के हस्तक्षेप से उन्हें स्कौटिश चर्च कालिज में प्रवेश मिल गया। इस प्रकार वे कलकत्ता आकर पुनः अध्ययन में लग गये। पुनः प्रवेश की प्रतीक्षा के दौरान सुभाष ने 49वीं बंगाली रेजिमेंट में भर्ती होने का प्रयास किया परंतु दृष्टि में दोष होने के कारण उन्हें अस्वीकृत कर दिया गया।

कालिज में प्रवेश लेने के पश्चात् सुभाष ने विश्वविद्यालय के भारतीय सुरक्षा दल (प्रादेशिक सेना) में अपना नाम अंकित कराया और फ़ोर्ट विलियम के समीप प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित हुए। उन्होंने खाकी वर्दी पहनी और उत्साह के साथ बंदूक चलाने का अभ्यास किया तथा सैनिक जीवन का खूब आनंद लिया। फ़ोर्ट विलियम में अपनी राइफ़ल उठाते समय गर्व से उनकी छाती फूल गयी। भारतीय होने के कारण वे फ़ोर्ट विलियम में प्रवेश नहीं पा सकते थे परंतु सैनिक के नाते वे वहां प्रवेश पा गये।

उन्होंने 1919 में दर्शनशास्त्र के साथ बी.ए. आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और एम.ए. में मनोविज्ञान विषय में प्रवेश लिया। कुछ समय पश्चात उनके पिता ने उनसे ज्ञात किया कि क्या वे इंग्लैंड जाकर आई.सी.एस. की परीक्षा में भाग लेंगे? उन दिनों आई.सी.एस. की नौकरी सर्वोत्तम मानी जाती थी और प्रत्येक भारतीय युवक की इंग्लैंड जाकर इस परीक्षा में सम्मिलित होने की तीव्र इच्छा रहती थी परंतु सुभाष इंग्लैंड जाकर इस परीक्षा में सम्मिलित होने के इच्छुक नहीं थे क्योंकि इसमें उत्तीर्ण होकर वे आई.सी.एस. अधिकारी के रूप में अंग्रेजी सरकार को सहयोग नहीं देना चाहते थे। उनका मन तो इसके विपरीत अन्य कार्यों में रमा था। अंततोगत्वा उन्होंने इस विचार से कि इंग्लैंड में आठ मास के प्रवास मे वे आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पायेंगे उन्होंने इंग्लैंड जाने की सहमति दे दी।

9सितंबर, 1919 को उन्होंने इंग्लैंड के लिए समुद्री जहाज द्वारा प्रस्थान किया

और पांच सप्ताह की यात्रा के पश्चात वहां पहुंच गये। उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। इसी बीच सुभाष ने अभी भारतीय समुद्र तट छोड़ा भी न था कि अमृतसर के जलियाँ वाला बाग में अनेक स्त्री, पुरुषों एवं बच्चों की निर्मम हत्या कर दी गयी। पंजाब में 'मार्शल ला' लगा दिया गया और समाचारों पर पाबंदी लगा दी गयी। लाहौर एवं अमृतसर में भयप्रद घटनाओं की अस्पष्ट अफवाहें फैल गयीं। परंतु सुभाष निश्चितता की स्थिति में इंग्लैंड रवाना हुए थे।

कैंब्रिज में आई.सी.एस. परीक्षा की तैयारी अंग्रेजी निबंध, संस्कृत, दर्शनशास्त्र, अंग्रेजी कानून, राजनीति विज्ञान, आधुनिक यूरोपीय इतिहास, अंग्रेजी इतिहास, अर्थशास्त्र, एवं भूगोल विषयों पर लैक्चरों द्वारा करायी जाती थी। वहां के विद्यार्थियों के स्वतंत्र वातावरण एवं सामान्य रूप से विद्यार्थियों के प्रति आदरपूर्ण दृष्टिकोण ने सुभाष को प्रभावित किया। यहां का वातावरण कलकत्ता के पुलिस आक्रांत वातावरण से सर्वथा भिन्न था। कलकत्ता में प्रत्येक विद्यार्थी पर राजनैतिक क्रांतिकारी होने का संदेह किया जाता था। सुभाष को आई.सी.एस. की परीक्षा की तैयारी के लिए केवल आठ मास का समय मिला था इसलिए उन्हें सफलता की कम आशा थी। परंतु उनको स्वयं आश्चर्य हुआ जब वे इस परीक्षा में न केवल सफल ही घोषित हुए बल्कि समस्त विद्यार्थियों में चतुर्थ स्थान भी प्राप्त किया।

अब उन्हें अपनी जीवन वृत्ति के संबंध में कठिन निर्णय लेना था। उन्हें यह भी ज्ञात था कि इससे उनके अभिभावकों को आघात पहुंचेगा। इस संबंध में उन्होंने अपने बड़े भाई शरत चंद्र बोस से जो भारत में थे, काफी पत्र-व्यवहार किया। उनके सामने यह प्रश्न था कि क्या वे अपनी अब तक की समस्त आकाक्षाओं एवं सपनों को तिलांजलि देकर आई.सी.एस. बनकर सुखद जीवन व्यतीत करें? सात मास के मानसिक उत्पीड़न के पश्चात् अंत में उन्होंने नियुक्ति से पूर्व ही आई.सी.एस. के पद से त्याग-पत्र देने का निश्चय किया। अब तक किसी भारतीय ने आई.सी.एस. के इतिहास में ऐसा नहीं किया था। अपने पत्रों में सुभाष ने लिखा था। "जब चितरंजन दास इस आयु में प्रत्येक वस्तु त्याग सकते है और जीवन की अनिश्चितता स्वीकार कर सकते हैं तो मुझे विश्वास है कि मुझ जैसा युवक जिस पर कोई भी लौकिक उत्तरदायित्व नहीं है ऐसा करने में अधिक सक्षम है..."

"अरविंद घोष का उदात्त उदाहरण मेरी दृष्टि के सामने है। मैं यह अनुभव करता हूं कि उनका उदाहरण मुझ से त्याग की अपेक्षा करता है। वह त्याग करने के लिए मैं प्रस्तुत हूं..."

"मुझे विश्वास हो गया है कि हमारे लिए अंग्रेज सरकार से संबंध विच्छेद करने का अब समय आ गया है ..."

"किसी शासन को समाप्त करने का सर्वोत्तम तरीका यही है कि उससे अपने आपको हटा लिया जाये... मैंने कुछ दिन पश्चात् अपना त्याग-पत्र भेज दिया..."

"चितरंजन दास ने मेरे पत्र के उत्तर में अब तक हुए कार्यों के संबंध में लिखा है। उनकी यह शिकायत है कि कार्यकर्ताओं का अभाव है। जब मैं घर लौटूंगा तो मेरे लिए मेरी रुचि अनुसार बहुत कार्य मिलेगा। सांचा ढल चुका है...।"

4. राजनीति में प्रवेश

सुभाष 16 जुलाई 1921 को बंबई पहुंचे और वहां महात्मा गांधी से उनके लेबरनम सड़क पर स्थित निवास पर मिले। उस समय उनकी आयु केवल 23 वर्ष थी। युवक सुभाष, जो सार्वजनिक जीवन में पदार्पण कर रहे थे, उस नेता से मिलकर अंतरंग बात करना चाहते थे जिसने संपूर्ण देश में अंग्रेजी सरकार से असहयोग करने का आंदोलन आरंभ कर रखा था। उनके मन में तीन प्रश्न थे। उन्हीं का उत्तर वे गांधीजी से ज्ञात करना चाहते थे। कांग्रेस द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों से कैसे आशा की जा सकती थी कि उनके परिणामस्वरूप करों की आदायगी बंद हो जायेगी अथवा सरकार की अवज्ञा करने से उसे भारत छोड़कर चले जाने के लिए कैसे बाध्य किया जा सकता था? गांधीजी एक ही वर्ष की अवधि में स्वराज दिलाने का किस प्रकार वचन दे सकते थे? अपनी स्वाभाविक शांतिपूर्ण मुद्रा में गांधीजी ने सुभाष के प्रश्नों का उत्तर दिया। सुभाष पहले प्रश्न के उत्तर से संतुष्ट हुए परंतु अन्य दो प्रश्नों के उत्तर उन्हें सन्तुष्ट न कर सके। तथापि उन्होंने गांधीजी के कलकत्ता पहुंचकर देशबंधु चितरंजन दास से मिलने के सुझाव को स्वीकार किया।

कलकत्ता पहुंचकर सुभाष ने शीघ्र ही चितरंजन दास से मिलने का अवसर प्राप्त किया। अभी उनकी बातचीत समाप्त भी नहीं हुई थी कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि उन्हें उनका नेता मिल गया है जिसका उन्हें अनुकरण करना है। उन्होंने कलकत्ते में रहकर ही देश में व्याप्त स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। समस्त देश में उत्साह की लहर से गांधीजी के तीन सूत्री कार्यक्रम को पर्याप्त सफलता मिलने की संभावना प्रतीत होती थी। इनमें विदेशी वस्त्रों का त्याग, विधानसभा और अदालतों एवं शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार शामिल था। उदारवादी अलग रहे और क्रांतिकारी गांधीजी के अहिंसावादी सिद्धान्त से असहमत थे। अपने आंदोलन में गांधीजी को समस्त देश की जनता का सहयोग तो मिला परन्तु फिर भी सत्ता के साथ देशव्यापी स्तर का कोई संघर्ष नहीं हुआ। कांग्रेस के इस ह्रास के अवसर पर सरकार ने प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आने की घोषणा की। कांग्रेस तुरंत शाही दौरे के विरोध में देश व्यापी आंदोलन संगठित करने में जुट गयी। सुभाष इस युद्ध में कूद पड़े और इस विरोध का नेतृत्व करने लगे। अंग्रेज अधिकारी इस आंदोलन से घबरा गये और उन्होंने

चितरंजन दास और सुभाष सहित उनके साथियों को 10 दिसंबर 1921 की संध्या समय पकड़ कर जेल भेज दिया। सुभाष के लिए जेल जाने का यह प्रथम अवसर था। जनवरी 1941 से पूर्व जब वे भारत से अदृश्य हुए थे सरकार ने बीस वर्ष से भी कम समय में उन्हें कम-से-कम ग्यारह बार जेल भेजा। उनके प्रथम बार बंदी बनते ही उनके द्वारा संपादित बंगाल कालिज के प्राचार्य पद का कार्य, बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के प्रचार अधिकारी का कार्य एवं राष्टीय वालियंटर कोर का कार्य समाप्त हो गये।

संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में हिंसात्मक कार्यवाई होने के कारण अगले वर्ष गांधीजी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया। तत्पश्चात् उन पर सरकार द्वारा अभियोग चलाया गया और उनको राजद्रोह के लिए छह वर्ष के साधारण कारावास का दंड दिया गया। उसी वर्ष के आरंभ में सुभाष को कारावास से मुक्ति मिली। वे बाढ़-पीड़ितों के सेवा कार्य में लग गये और उन्होंने 'बांगलार कथा' समाचार पत्र के संपादन का कार्य संभाला।

मोतीलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के पिता) तथा चितरंजन दास द्वारा स्थापित स्वराज पार्टी ने विधान सभाओं एवं नगर पालिकाओं में प्रवेश का पक्ष लिया तथा बंगाल कांग्रेस ने कलकत्ता निगम के चुनाव में भारी जीत हासिल की। सी.आर. दास महापौर नियुक्त हुए और उन्होंने 27 वर्ष के युवक सुभाष को मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त किया। अब तक के कार्यकारी अधिकारियों में सुभाष की आयु सबसे कम थी। इस पद का वेतन तीन हजार रुपये मासिक था। परंतु उन्होंने डेढ़ हजार वेतन स्वीकार किया। सुभाष निगम के कार्यों में जी-जान से लग गये और कलकत्ता नगर के नागरिकों ने एक नये नागरिक जीवन का अनुभव किया। सुभाष पर क्रांतिकारी षड्यंत्र का आरोप लगाकर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कैद कर लिया परंतु जनता ने यह अनुभव किया कि उनकी गिरफ्तारी का वास्तविक कारण निगम में स्वराज पार्टी के प्रशासन पर वार करना था। उन्हें बर्मा की मांडले जेल में भेज दिया गया। उस समय बर्मा भारत का ही भाग था। सुभाष को मांडले जेल में रखे जाने पर गर्व था क्योंकि इसी जेल में प्रख्यात देशभक्त लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय रह चुके थे। दो वर्ष पश्चात् सुभाष को मांडले से कलकत्ता लाया गया और वहां मई 1927 में स्वास्थ्य खराब होने के कारण उन्हें मुक्त कर दिया गया।

चितरंजनदास दो वर्ष पहले से ही कारावास में थे, गांधीजी ने राजनीति से लगभग अवकाश ग्रहण कर रखा था और मोतीलाल नेहरू अपनी रुग्ण पुत्रवधू के इलाज के लिए बाहर चले गये थे। अतः सुभाष को अपने ही साधनों पर निर्भर रहना पड़ा

परंतु उनको सी.आर. दास द्वारा पर्याप्त प्रशिक्षण मिल चुका था और मांडले जेल में उन्हें विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने की नीति पर विचार करने का पर्याप्त समय मिला था। तीस वर्ष की आयु में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष निर्वाचित हो जाने पर वे राजनीति में पुन: सक्रिय हो गये।

ब्रिटेन की संसद ने संवैधानिक सुधारों की दूसरी किश्त देने हेतु भारत की सुयोग्यता आंकने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया जिसमें सभी गोरे थे। अब भारत में इस कमीशन के बहिष्कार का उफान आया हुआ था। सुभाष बंगाल में इस कमीशन के बहिष्कार की अग्रिम पंक्ति में उसी प्रकार कार्यरत थे जैसे इससे पूर्व प्रिंस ऑफ वेल्स की भारत यात्रा के विरोध में उन्होंने आंदोलन की अगुवाई की थी। उन्होंने अब संपूर्ण बंगाल छात्र सघ एवं समस्त बंगाल युवक संघ का नेतृत्व किया। वर्ष के अंत में मद्रास में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भारतीयों का लक्ष्य स्वतंत्रता घोषित किया गया। सुभाष, जवाहरलाल नेहरू और शुऐब कुरैशी के साथ तीन महामंत्रियों में से एक नियुक्त हुए। इस प्रकार प्रथम बार वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक नेता के रूप में उदित हुए।

दिसंबर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के समय वाममार्गी और दक्षिण पंथी कांग्रेसियों में पहली बार शक्ति परीक्षा हुई। गांधीजी ने यह प्रस्ताव पारित किया कि 29 दिसंबर तक यदि भारत को उपनिवेश का दर्जा नहीं दिया गया तो वे असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर देंगे। सुभाष ने स्वतंत्रता के दर्जे से नीचे कोई स्थिति न स्वीकार करने का संशोधन रखा। संशोधन के पक्ष में 973 और विपक्ष में 1350 मत पड़े, इसलिये अस्वीकार हो गया। इस मतदान में सुभाष को यह अनुभव हुआ कि मतदाताओं के मन में मतदान करते समय गांधीजी में विश्वास व्यक्त करने की भावना रही।

एक वर्ष बाद लाहौर (अविभाजित पंजाब की राजधानी) के ऐतिहासिक अधिवेशन में जवाहरलाल की अध्यक्षता में मध्य रात्रि के समय अपूर्व उत्साह के वातावरण में स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

सुभाष को अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने इस पद का भार दो वर्ष तक संभाला। सुभाष चंद्र बोस का व्यक्तित्व अब स्वतंत्रता संघर्ष की अग्रिम पंक्ति में जोरदार तरीके से उभरा और उन्होंने समस्त भारत के छात्र एवं युवकों को प्रेरक नेतृत्व प्रदान किया एवं श्रमिकों का सहयोग प्राप्त किया और सामान्यत: वाममार्गियों का, जो अब विदेशी सरकार से संघर्ष करने के लिए बेताब थे, नेतृत्व किया।

आगामी सात वर्षों में 33 वर्ष की आयु में सुभाष का कलकत्ता निगम के महापौर के रूप में निर्वाचन, क्षयरोग के इलाज के लिए यूरोप प्रवास, वियना में सरदार पटेल

के अग्रज विट्ठल भाई पटेल, जो तीव्र लड़ाकू थे, से संपर्क, निषेधात्मा होते हुए भी कलकत्ता आगमन और फलस्वरूप नजरबंदी, एक बड़े आपरेशन के लिए पुनः यूरोप प्रस्थान, वीयना में भारतीय केंद्रीय यूरोपीयन सोसाइटी के सम्मेलन में सम्मिलित होना, मुसोलोनी द्वारा उद्घाटित रोम के एशियायी छात्र सम्मेलन में भाषण, आयरलैंड की यात्रा, बंबई आगमन और समुद्री जहाज पर ही पकड़ा जाना, बिना शर्त के मुक्ति, एवं यूरोप के लिए प्रस्थान, यह सब कुछ हुआ।

5. राष्ट्रीय नेता

जनवरी 1938 में सुभाष देश से बाहर ही थे कि उन्हें अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित कर लिया गया जो राष्ट्र की ओर से किसी भारतीय को दिया जाने वाला उच्चतम पद था। सुभाष की आयु अब 41 वर्ष थी और वह अब तक के अध्यक्षों में सबसे अल्पायु के थे

सुभाष चंद्र बोस की कांग्रेस की अध्यक्षता का यह वर्ष इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इसी वर्ष राष्ट्रीय योजना समिति का निर्माण हुआ था। जवाहरलाल नेहरू इस समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए। कांग्रेस का नेतृत्व ग्रहण करने पर भारत के इतिहास और सुभाष के जीवन ने एक नवीन मोड़ लिया। इस विचार से कि योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए केवल एक वर्ष मर्याप्त नहीं हैं सुभाष ने 1939 में कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव लड़ने का निश्चय किया। गांधीजी ने सुभाष की इस इच्छा को उचित न मानकर डा. सीतारमैया पर अपने आशीर्वाद का हाथ रखा। इस तीखे चुनाव में सुभाष की विजय हुई और गांधीजी ने डा. सीतारमैया की हार को अपनी हार माना। इससे सुभाष को दुख हुआ। मध्य प्रदेश के त्रिपुरी अधिवेशन में अपनी अस्वस्थता के कारण सुभाष भाग न ले सके। अंग्रेजी सरकार से छह मास की अवधि में भारत को स्वतंत्रता देने का उनका अंतिम प्रस्ताव गांधीवादियों ने अस्वीकृत कर दिया। अब कांग्रेस में वाममार्गियों और गांधीवादियों में बीच की खाई प्रकट रूप से सामने आई। गांधीजी के अनुयायियों ने इस बृहद अधिवेशन में प्रस्ताव पारित किया कि सुभाष गांधीजी के परामर्श से कांग्रेस हाई कमांड की उच्च कार्यकारिणी के सदस्यों का निर्वाचन करें। सुभाष अपनी 'कैबिनेट' के साथी चुनने में गांधीजी को परामर्श देने के लिए सहमत न कर सके। दोनों में कोई समझौता नहीं हो सका। जब अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समिति की बैठक कलकत्ता में हुई तो सुभाष ने अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र दे दिया और कांग्रेस में ही फॉर्वर्ड ब्लॉक की स्थापना की। इस नये ग्रुप को वाममार्गी कांग्रेसियों से उत्साहवर्धक एवं बहुत सहयोग मिला। कांग्रेस के दक्षिण पंथियों और फॉर्वर्ड ब्लॉक में विवाद इस हद तक बढ़ा कि कांग्रेस हाई कमांड ने संस्था में द्वितीय बार अध्यक्ष पद पर निर्वाचित सुभाष पर तीन वर्ष तक संस्था में कोई पद न ग्रहण करने की रोक लगा दी। यह उनको दंडित करने की दृष्टि से

किया गया था क्योंकि उन्होंने कांग्रेसजनों को अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की महासमिति के दो प्रस्तावों का विरोध करने का परामर्श दिया था। इन प्रस्तावों में से एक था प्रांतीय कांग्रेस समितियों एवं मंत्रियों मे बीच संबंध परिभाषित करना तथा दूसरा प्रस्ताव सविनय अवज्ञा (पैसिव रेजिस्टेंस) आरंभ करने से पूर्व समितियों से आज्ञा प्राप्त करना।

ठीक जिस प्रकार सुभाष ने त्रिपुरी में भविष्यवाणी की थी, सितंबर 1939 में यूरोप में युद्ध आरंभ हो गया। फॉर्वर्ड ब्लॉक ने अंग्रेज विरोधी कार्य तीव्र गति से आरंभ कर दिया जिससे भारत में अंग्रेजों की युद्ध की तैयारी को पर्याप्त धक्का लगा। अधिकारियों ने उन्हें सन् 1940 में कारावास में डाल दिया। सुभाष को अब यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि भारतवर्ष को इस विश्व युद्ध से पूर्ण लाभ उठाना चाहिए और अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने में अंग्रेजों के शत्रुओं से सहयोग लेना चाहिए। उन्होंने सोच समझकर अपने जीवन के साथ एक जुआ खेला। नवंबर 1940 में अपनी मुक्ति के प्रश्न को लेकर उन्होंने कारावास में भूख हड़ताल की। अंग्रेज यह नहीं चाहते थे कि सुभाष की मृत्यु उनके हाथों में हो इसलिये उन्हें कारावास से मुक्त कर दिया गया परंतु उनकी गतिविधियों पर पूर्ण निगरानी रखी गई।

सुभाष ने भारत से बाहर जाकर युद्ध में अंग्रेजो के विरुद्ध शक्तियों से सहायता लेने एवं एक सेना संगठित करके भारत में विदेशी शक्ति से युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर रखा था। जनवरी 1941 के एक दिन समस्त भारत में यह जान कर सनसनी फैल गई कि सुभाष रात-दिन पहरा देने वाली पुलिस की आंखों में धूल झोंककर अपने कलकत्ता स्थित घर से निकल गये। तत्पश्चात् दुनिया ने सुभाष के बारे में उस समय जाना जब वे नौ मास बाद जर्मनी रेडियो से भारतीयों को संबोधित करते हुए बोले। उनका भारत से मध्य रात्रि के समय मुस्लिम साधु के रूप में पलायन, अज्ञात रूप में बीमा कंपनी का एजेंट बनकर पेशावर तक की रेल यात्रा, तत्पश्चात् काबुल तक ट्रक में यात्रा एवं 'मूक बधिर तीर्थ यात्री' के रूप में अफगानिस्तान की राजधानी काबुल में प्रवास के समय पकड़े जाने का भय, कष्ट एवं गोपनीयता, मुसीबतें उस समय तक बनी रही जब तक इटली के दूतावास ने उन्हें अफगानिस्तान से बाहर निकाल कर मास्को होते हुए बर्लिन नहीं पहुंचाया। इस रोमांचक कहानी का वर्णन उनके काबुल स्थित मेजबान मित्र उत्तम चंद्र मलहोत्रा ने अपनी पुस्तिका 'सुभाष जब जियाउद्दीन थे' में किया है।

6. विदेशी सहायता की खोज

युद्धकालीन बर्लिन में आगमन के पश्चात् कुछ समय के लिए सुभाष 'ओरलैंडो मजोटा' नाम से जाने जाते रहे। यह इटेलियन नाम अफगानिस्तान से रूस होते हुए जर्मनी जाने के लिए पासपोर्ट पर अंकित था। जर्मन विदेश मंत्रालय में विशेष भारतीय विभाग के कुछ सच्चे और सहानुभूति रखने वाले जर्मनी निवासियों की सक्रिय सहायता से वे शीघ्र ही अपनी महत्वपूर्ण योजनाओं के कार्यान्वयन में लग गए। यह छोटा समर्पित एवं सहयोगी जर्मन ग्रुप नाज़ी प्रेरित नहीं था। इस ग्रुप का नेता रोडेशिया का एडमिरल वोनट्रीट सुल्ज नामक विद्वान था, जिसे तीन वर्ष पश्चात् हिटलर को मारने के षड्यंत्र में सम्मिलित होने के कारण फांसी दे दी गई थी। उसके सहायक डा. अलक्जैंडर वर्थ थे जो अब भी पश्चिमी जर्मनी और स्वतंत्र भारत के बीच मैत्री को प्रोन्नत करने में सक्रिय कार्य कर रहे थे। 23 जनवरी1970 को नेताजी के 73 वें जन्म दिवस के उपलक्ष में कलकत्ता में आयोजित उत्सव में उन्होंने विशेष भाषण दिया था। हिटलर सरकार में इस छोटे से ग्रुप ने यह निश्चय कर लिया था कि सुभाष को अपने महत्वपूर्ण उद्देश्य की साधना में अधिकतम सुविधा मिले और सरकार के बाहर नाज़ी पार्टी अथवा सरकारी अधिकारियों की अफ़सरशाही द्वारा उनके कार्य में कोई हस्तक्षेप न हो। सुभाष ने बर्लिन में स्वतंत्र भारत केंद्र की स्थापना की। इसके सदस्य बीस भारतीय थे जिनमें भूतपूर्व राजदूत ए.सी.एन. नमबियार, डा. गिरजा मुखर्जी, डा.एम.आर. व्यास भी सम्मिलित थे। डा. व्यास आज़ाद हिंद रेडियो, आज़ाद मुस्लिम रेडियो, राष्ट्रीय कांग्रेस रेडियो से दैनिक प्रसारण की देखभाल करते थे। बाद में सुभाष ने यूरोप में उपस्थित और कुछ उत्तरी अफ्रीका से लाये गये युद्धबंदियों, जिन्हें अंग्रेज वहां अपने साम्राज्यवादी युद्ध में जर्मनी और इटली के विरुद्ध लड़ने के लिए ले गये थे, से एक सैन्य दल का निर्माण किया। स्वतंत्र भारतीय केंद्र आज़ाद भारत की अस्थाई सरकार का अग्रगामी रूप था जिसकी घोषणा सुभाष ने दो वर्ष बाद सिंगापुर में की थी और भारतीय सैन्य दल आई.एन.ए. का पूर्वगामी रूप था जिसका नेतृत्व सुभाष ने भारत-बर्मा सीमा पर किया।

वोन ट्रोट की देखरेख में कार्य करने वाली टीम को जर्मनी के विदेशी विभाग की राजनैतिक शाखा का सहयोग प्राप्त था। विशेषकर उस विभाग का जो डा. मेलचर

के अधीन कार्य करता था। डा. मेलचर बाद में स्वतंत्र भारत में जर्मनी के राजदूत नियुक्त हुए। बर्लिन में सुभाष द्वारा स्थापित स्वतंत्र भारत केंद्र एक अर्द्ध-राजनैतिक स्तर की संस्था थी जिसका संबंध जर्मनी के अन्य तटस्थ देशों की तरह केवल विदेश विभाग से था। सुभाष नाज़ी पार्टी से सीधे संपर्क करने में समर्थ थे।

प्रारंभ से ही सुभाष और जर्मन मंत्रालय के विदेशी विभाग को यह स्पष्ट था कि जर्मनी के साथ भारत का सहयोग जर्मनी एवं अंग्रेजों के बीच युद्ध तक ही सीमित है।भारत जर्मनी के अन्य देशों के साथ झगड़ों अथवा आंतरिक विवादों से कोई संबंध नहीं रखना चाहता है। सुभाष अथवा आज़ाद हिंद रेडियो ने कभी भी यूरोप में अथवा बाहर नाज़ी नीति का समर्थन नहीं किया। जर्मनी के अंदर भारतीय क्रिया-कलाप इस स्पष्ट विचार के आधार पर किए जा रहे थे कि भारतीय अपने देश की स्वतंत्रता का कार्य आगे बढ़ायेंगे। वे अपना संबंध नाज़ी पार्टी की विचार-धारा से नहीं रखेंगे। यद्यपि सुभाष यूरोप में रोम को अपने कार्यों का केंद्र बनाने के लिए अच्छा समझते थे परंतु सुलझे हुए राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्होंने बर्लिन को ही कार्यक्षेत्र बनाया क्योंकि इस संबंध में जर्मनी और इटली में समझौता हुआ था जिसे सुभाष अथवा भारत के साथ सहानुभूति रखने वाले उनके जर्मन सहयोगी परिवर्तित नहीं कर सकते थे। वे बर्लिन की अपेक्षा मास्को को भी अच्छा समझते यदि काबुल से आते समय मास्को में रुकने पर रूस ने ऐसा कुछ संकेत दिया होता। सुभाष जैसे व्यावहारिक व्यक्ति के लिए जो भारत के प्रत्येक मित्र से सहायता लेना चाहता था कोई अवसरवादिता की बात नहीं थी परंतु यूरोप के तत्कालीन राजनैतिक स्वरूप ने सुभाष को जर्मनी को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाने के लिए करीब-करीब बाध्य कर दिया था।

यही पृष्ठभूमि थी जिसके अंतर्गत सुभाष ने यूरोप में स्वतंत्र भारत केंद्र, भारतीय सैन्य दल, यूरोप में राष्ट्रीय विचारों के भारतीयों का संगठन, गुप्त भारतीय रेडियो केंद्र को संगठित किया एवं अंत में एशिया के लिए पनडुब्बी की रहस्यमय यात्रा की। उसी दिन से जब सुभाष ने भारतीय सैन्य दल (आजाद हिंद फौज) का निर्माण किया, सैन्य दल के सदस्य उन्हें नेताजी कहकर संबोधित करने लगे।

भारतीय एवं जर्मनी के राजनीतिक नेताओं के बीच उच्चस्तरीय वार्तालाप बर्लिन में नेताजी के पहुंचने के कुछ दिन बाद ही शुरू हो गई थी। उन्होंने विदेश मंत्री वोन रिबन ट्रोप से वार्तालाप आरंभ की परंतु अगले वर्ष 1942 की 28 मई तक चांसलर हिटलर से नहीं मिल सके थे। इन उच्चस्तरीय मुलाकातों के फलस्वरूप नेताजी को व्यावहारिक एवं आर्थिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई थी। जर्मन विदेश मंत्री ने सुभाष की इस हठ भरी मांग को भी मान लिया कि कोई जर्मन अधिकारी उनके कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा एवं समस्त आर्थिक सहायता स्वतंत्र भारत के

नाम ऋण के रूप में दी जायेगी जिसकी वापसी युद्ध समाप्त होने के पश्चात् होगी। विदेश मंत्रालय का कार्यालय एवं उच्चतम सैनिक अधिकारी उन्हें तकनीकी सहायता तथा आवश्यक कार्यकर्ता देगा। नेताजी को विदेश मंत्री के युद्ध संबंधी व्यय के लिए विशेष फंड में से धन मिलता था। उनकी योजना का विस्तार होने पर एवं अनुयायियों की संख्या में वृद्धि होने की दशा में अधिक आर्थिक सहायता का वचन भी उन्हें मिला। बाद में जर्मनों ने अपने वचन का पालन बिना लिखत-पढ़त के करना आरंभ कर दिया। दो वर्ष बाद नेताजी ने स्वतंत्र भारत के नाम पर ऋण की सांकेतिक अदायगी भी की और जर्मन राजूदत को टोकियो में 5,00,000 येन उस फंड से, जो पूर्व एशिया में नेताजी के युद्ध फंड के लिए भारतीयों ने स्वेच्छा से चंदा एकत्र करके किया था, दिये। जर्मनी में नेताजी के कार्यों के लिए सिद्धांत रूप में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी।

जर्मनी में राज्य सचिव विल्हम कैप्लर सामान्यत: जर्मन विदेश मंत्री, चांसलर एवं सरकारी संगठनों के बीच संपर्क अधिकारी का काम करते थे। नेताजी, उनके भारतीय सहयोगी एवं विशेष भारतीय विभाग के जर्मन स्टाफ के संबंध विल्हम कैप्लर के साथ पूर्णरूपेण अच्छे थे। व्यवस्था की दृष्टि से समस्त कार्यक्रम सुगमता से चल रहा था। अब भारतीय सहकार्यकर्ताओं की संख्या 35 हो गई थी। 2 नवंबर 1941 को स्वतंत्र भारत केंद्र का अधिकृत रूप से उद्घाटन हुआ। बंबई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भूतपूर्व सदस्य एन.जी.गैनपुले भी स्वतंत्र भारत केंद्र में सक्रिय कार्यकर्ता और नमबियार के सहायक के रूप में सम्मिलित हुए। आगामी वर्ष में नेताजी ने नमबियार को अपना उत्तराधिकारी एवं उपनेता नियुक्त किया।

स्वतंत्र भारत केंद्र ने अपना ध्यान समाचार प्रसारण पर केंद्रित किया और आज़ाद हिंद रेडियो ने प्रसारण कार्य अक्तूबर 1941 में प्रारंभ किया। भारतवर्ष के विभिन्न भागों के हिंदू, मुसलमान ईसाई और पारसी जाति के लगभग बीस व्यक्ति प्रसारण सेवा कार्य करते थे और अंग्रेजी, हिंदुस्तानी, बंगला, फारसी, तमिल, तेलुगु और पश्तो सात भाषाओं में प्रसारण होता था।

सर्व प्रथम नेताजी ने बर्लिन में जर्मन सैनिक अधिकारियों से जर्मन विदेश कार्यालय की विशेष भारतीय शाखा के माध्यम से संपर्क स्थापित किया और फिर सीधे उनसे मिले। इन संपर्कों के दौरान उनकी मुलाकात डा. सैफरिज से हुई जो उनके गहरे मित्र बन गए। डा. सैफरिज सुभाष की इच्छानुसार भारतीय सैन्य दल की देखभाल करते थे और युद्ध उपरांत उन्होंने जर्मन-भारत समाज स्थापित करने में तथा उसके कार्यों का विस्तार करने में मुख्य भूमिका निभाई। आजकल यह संस्था बर्लिन में भारतीय सूचना संस्थान, जिसकी नींव भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1929 में जवाहरलाल के सुझाव पर डाली थी, का कार्य कर रही है।

नेताजी ने भावी आज़ाद हिंद फौज के निर्माण की नींव जर्मनी में लगभग उसी समय डाली थी जिस समय जनरल मोहनसिंह ने पूर्वी एशिया में यह कार्य आरंभ किया था। परंतु यह भारतीय सैन्य दल यूरोप से भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर आई.एन.ए. के आक्रमण के साथ-साथ बर्मा-भारत सीमा पार करके अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करने के लिए फरवरी 1944 में नहीं लाया जा सका। फिर भी स्वतंत्र भारत केंद्र का यह लड़ाकू विभाग, जिसकी स्थापना भारतीय सैन्य दल के रूप में हुई थी, पूर्वी एशिया में आई.एन.ए. के विस्तार की दिशा में अग्रगामी कदम था जो आजाद हिंद की अस्थाई सरकार का लड़ाकू हाथ थी। इस प्रकार स्वतंत्र भारत केंद्र और भारतीय सैन्य दल की स्थापना से नेताजी को युद्धकालीन क्रांतिकारी सरकार चलाने का क्रियात्मक अनुभव प्राप्त हुआ एवं उस समुचित ढंग से बनी सरकार के नेतृत्व में युद्ध करने के लिए मुक्ति सेना को संजोने का अनुभव भी उन्हें मिला। यह नेताजी की दूरदर्शिता ही थी जिसने बचाव पक्ष के वकील के रूप में कार्यरत भोलाभाई देसाई को 1945 में लाल किले में आई.एन.ए. के अभियोग में अंतर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत अभियुक्तों को मुक्त कराने में सक्षम बनाया।

प्रारंभ में जर्मनी में भारतीय स्वयं सेवकों द्वारा केवल भारतीय छापामार सैनिकों का दल बनाया गया था जिसमें एक सौ से भी कम भारतीय स्वयं सेवक रहे होंगे। इन छापामार सैनिकों का प्रशिक्षण दो भारतीय नागरिकों की सहायता से कप्तान हरविच ने किया था। ये भारतीय आबिद हसन और एन.जी. स्वामी थे जिन दोनों ने बाद में पूर्वी एशिया में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। रूस में स्टैलिनग्रेड के एवं अफ्रीका में एल ऐमीन युद्ध में मोर्चों पर जर्मन सेनाओं की पराजय के कारण भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर इन भारतीय छापामारों के युद्ध में सम्मिलित होने की संभावना समाप्त हो गई। मूल योजना यह थी कि छापामारों को हवाई जहाज द्वारा उपर्युक्त समय पर भारत की उत्तरी सीमा पर उतारा जाए और वहां से चार बटालियनों से निर्मित भारतीय सैन्य दलों के बड़े संगठन को धीरे-धीरे वाहनों द्वारा भेजा जाए परंतु ऐसा नहीं होना था।

सितंबर 1941 में जर्मनी और उत्तरी अफ्रीका में भारतीय सेना के युद्ध बंदियों में से भारतीय सैन्य दल के लिए भर्ती का कार्य आरंभ हुआ। नेताजी ने एनावर्ग का शिविर प्रथम बार दिसंबर में देखा। उन्होंने अपनी बातचीत एवं भाषणों में स्वतंत्र भारत के प्रति निष्ठा की स्पष्ट मांग रखी। अधिकारी एवं सैनिक नेताजी से अत्यधिक प्रभावित हुए।

पहला आधिकारिक गोपनीय युद्ध अभ्यास भारतीय सैन्य दल की तीन बटालियनों द्वारा किया गया और इसे नेताजी और उनके मित्र कर्नल यामा मोतो, जो जर्मनी

में जापान के राजदूत के सैनिक सहायक थे, ने देखा। बाद में यामा मोतो पूर्वी एशिया में जापानी संगठन के प्रमुख बने और टोकियो की सरकार एवं आई.एन.ए. के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य करने लगे। लै.कर्नल किर्पे के अधिकार में कार्यरत भारतीय सैनिकों ने राष्ट्रीय ध्वज के प्रति भक्ति की शपथ ली। यह राष्ट्रीय झंडा कांग्रेस का तिरंगा झंडा ही था केवल इतना अंतर था कि इसके बीच में चर्खे के स्थान पर उछलता हुआ सिंह अंकित था। उछलता हुआ सिंह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक था। सैनिक और नागरिकों के बीच 'जयहिंद' अधिकृत अभिवादन माना गया था एवं रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा रचित 'जन गन मन' राष्ट्रीय गान था।

नेताजी ने जर्मनी में स्वतंत्र भारत केंद्र एवं भारतीय सैन्य दल का निर्माण करके अपना प्राथमिक लक्ष्य प्राप्त किया। परंतु अभी उन्होंने जर्मनी, इटली और जापान द्वारा भारत के प्रति उनकी नीति एवं युद्धोपरांत भारत को स्वतंत्रता देने की वचनबद्धता के बारे में इन देशों की संयुक्त घोषणा प्राप्त नहीं की थी। मुसोलोनी ने इस वचनबद्धता के बारे में अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी एवं जापान के प्रधानमंत्री तोजो ने भी तत्परता से ऐसा ही किया परंतु हिटलर ने यह बहाना करके अपनी स्वीकृति रोक ली कि इस प्रकार की घोषणा का उस समय तक बहुत कम व्यावहारिक महत्व होगा जब तक घटनाचक्र द्वारा ऐसा निर्णय समर्थित न हो और ऐसी स्थिति में ही घोषणा को बल मिल सकेगा। हिटलर के साथ अपनी भेंट में नेताजी ने न केवल ऐसी वचनबद्धता की ही मांग की थी बल्कि उन्होंने जर्मनी के अंदर अपने राजनैतिक कार्यों में स्वतंत्रता का वचन भी चाहा था। जब हिटलर ने उनसे उनकी राजनीतिक परिकल्पना के स्वरूप के बारे में पूछा तो नेताजी ने वोन ट्राट से, जो दुभाषिये का कार्य कर रहे थे, अधीर होकर कहा कि महामहिम से कहो, " मैं जीवन भर राजनीति में ही रहा हूं और मुझे इस संबंध में किसी के परामर्श की जरूरत नहीं है।" हिटलर न तो अंग्रेजी बोल सकता था और न ही वह अंग्रेजी समझता था। वोन ट्राट ने सुभाष के कथन का कूटनीति की भाषा में ही अनुवाद किया। यह भेंट असफल रही। अब नेताजी जर्मनी में एक अंधे गलियारे में थे और वहां उन्हें अपने कार्य में प्रगति करने का अवसर न था। उन्हें विश्वास हो गया कि अब उनका कार्यक्षेत्र यूरोप में नहीं एशिया में होगा। फरवरी 1942 में जब अंग्रेजों ने सिंगापुर में जापानियों के सामने हथियार डाले उसी दिन से नेताजी ने एशिया जाने की योजना बनाना आरंभ की। उन्होंने पूर्व एशिया में तीस लाख भारतवासियों को एक सूत्र में बांधकर संगठित करने एवं उन्हें भारत की पूर्वी सीमा से युद्ध के लिए तैयार करने की पूर्व योजना बनायी।

7. निष्कासित क्रांतिकारी

जब सुभाष पश्चिम में मंजिल की प्रतीक्षा कर रहे थे उसी समय रासबिहारी बोस पूर्व में स्वतंत्रता के उषाकाल की प्रतीक्षा में थे। वे पतले-दुबले निष्कासित वृद्ध क्रान्तिकारी अपने प्रहार के लिए महान घड़ी की प्रतीक्षा में थे। वह घड़ी आयी जब 8 दिसंबर 1941 को जापान ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। एक ही रात में भारत के अंग्रेज शासक जापान के शत्रु हो गये। इस प्रकार यकायक रासबिहारी बोस को उनके ऊपर लगे सब प्रतिबंध हटाकर मुक्त कर दिया गया और अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए काम करने को उनका पथ-प्रशस्त हो गया। रासबिहारी इस स्वर्ण अवसर की तीस वर्ष के लंबे समय से, जबकि वे वेश बदलकर भारत से जापान आये थे, शांतिपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। दिल्ली में 1911 में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के अपराध में भारत में उनका सिर लाने हेतु पुरस्कार की घोषणा की गयी थी। इस समय ब्रिटेन और जापान गहरे मित्र थे और जापान में ब्रिटिश दूतावास के कर्मचारी इसी समय से जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि रासबिहारी टोकियो आकर भूमिगत हो गये हैं उनकी खोज में निरंतर लगे थे। वाइसराय को मारने के प्रयास के कारण उनको भारत लाकर उन पर अभियोग चलाने की योजना थी। इस स्थिति से बचने के लिए उन्हें अधिकारियों से आंख बचाकर अज्ञात एवं गुप्त रहने के लिए बार-बार स्थान परिवर्तन करना पड़ता था। इस कार्य में उन्हें अकथनीय कष्ट उठाना पड़ता था। अंत में कष्टों से छुटकारा पाने की दृष्टि से उन्होंने जापान की नागरिकता स्वीकार कर ली और खुले आम जीवन व्यतीत करने लगे। इसी बीच उन्होंने अपने शुभचिंतक जापानी की कन्या से विवाह कर लिया। उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्र द्वितीय विश्व युद्ध में मारा गया। उनकी धेवती अभी भारत-यात्रा पर आयी थी और उसने अपनी आंखों से भारत की उस स्वतंत्रता को देखा जिसका स्वप्न उसके नाना जीवन-पर्यंत संजोते रहे और जिसकी प्राप्ति लिए वे अंतिम सांस तक प्रयत्न करते रहे। भारत की स्वतंत्रता के केवल बीस मास पूर्व जापान में उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी अंतिम और एकमात्र इच्छा भारत को स्वतंत्र देखने की एवं स्वतंत्र भारत की मिट्टी में अपनी विश्रांत अस्थियों को समर्पित करने की थी। भारत स्वतंत्र है और उनकी अस्थियां अभी जापान में उनके जीवन के स्वप्न

स्वतंत्र भारत की तीर्थ-यात्रा के लिए प्रतीक्षा कर रही है, जिसके लिए वे जिये, संघर्ष करते रहे और अंत में जिसके लिए उन्होंने अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया।

रासबिहारी ही एकमात्र क्रांतिकारी नहीं थे जिन्होंने पूर्वी एशिया को कार्य-क्षेत्र बनाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय प्रयत्न किया। इस शताब्दी के प्रारंभ में अन्य व्यक्ति भी जापान, चीन, थाइलैंड, मलाया इस उद्देश्य से गये कि वे वहां पर निवास करने वाले भारतीयों के बीच अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी कार्य करें। उन्हें वह विश्वास हो गया था कि भारत के अंदर रहकर सशस्त्र क्रांति करना संभव नहीं है। उन्होंने विश्व-शक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्धा का लाभ उठाने की योजना बनायी और भारत से अंग्रेजी जूये को उतार फेंकने के लिए विदेशी सहायता लेने का प्रयास किया। इन क्रांतिकारियों में रासबिहारी बोस के अतिरिक्त थाईलैंड वासी पुराने अनुभवी बाबा अमरसिंह और शंघाई में बाबा उसमान खां विशेष उल्लेखनीय थे।

बाबा अमर सिंह प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पकड़े गये थे और उन्हें 22 वर्ष के कठोर करावास का दंड दिया गया था। बर्मा, जो उस समय भारत का अंग था, की जेल से मुक्त होकर वे थाईलैंड चले गये थे और क्रांतिकारी कार्य आरंभ किया था। क्योंकि अब वे वृद्ध हो गये थे अत: उन्होंने अपने क्रांतिकारी कार्यों को जारी रखने के लिए एक सिक्ख युवक ज्ञानी प्रीतमसिंह को, जो बैंकाक में धर्म-प्रचार कार्य करते थे, प्रशिक्षित किया। दिसंबर 1941 में पूर्वी एशिया में युद्ध आरंभ होने से पूर्व ज्ञानी प्रीतम सिंह बाबा अमरसिंह के निर्देशन में भूमिगत रहकर कार्य करते रहे। वे मलाया और बर्मा में अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों को पत्र लिखते थे और ये पत्र गुप्त रुप से भारतीय सैनिकों में प्रचारित किये जाते थे।

बाबा उसमान खां ने शंघाई में एक क्रांतिकारी पार्टी का गठन किया। उन्होंने एक समाचारपत्र निकाला जो चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, इंडोनेशिया और मलाया, बर्मा और भारत के प्रमुख नगरों में भेजा जाता था। पूर्वी एशिया युद्ध में जब शंघाई जापानियों के हाथ आ गया तब बाबा उसमान खां ने जापानी नौ सेना की सहायता से कुछ अपने आदमी थाईलैंड होते हुए भारत और कुछ दूसरे युवक मलाया को अंग्रेजों के विरूद्ध अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों में प्रचार के लिए भेजे।

इसी समय थाईलैंड विशेषकर स्वामी सत्यानंद पुरी द्वारा स्थापित थाई-भारत सांस्कृतिक निवासालय के माध्यम से क्रांतिकारी कार्यों का केंद्र बन गया। स्वामी सत्यानंद एक भारतीय विद्वान, दार्शनिक और रवींद्रनाथ टैगोर के शिष्य थे। उनका भारत में कुछ प्रमुख क्रांतिकारियों से घनिष्ठ संपर्क था। जब जापानियों ने 8 दिसंबर, 1941 को ब्रिटेन और अमेरिका के विरूद्ध युद्ध घोषित किया और उसी दिन वे थाईलैंड में

उतर गये। तब 24 घंटे के अंदर ही बाबा अमरसिंह के नेतृत्व में बैंकाक में भारतीय स्वतंत्रता लीग बनायी गयी। स्वामी सत्यानंद पुरी ने थाई-भारत सांस्कृतिक निवासालय को तुरंत भारतीय राष्ट्रीय परिषद में परिवर्तित कर दिया और स्वतंत्रता लीग को सहयोग दिया।

उसी समय से पूर्व में जापान से लेकर पश्चिम में बर्मा तक देशभक्त भारतीयों ने देश की स्वतंत्रता के लिए यथा संभव प्रयत्न आरंभ किये। पूर्वी एशिया में तीस-लाख भारतीयों ने भारतीय स्वतंत्रता लीग की शाखाएं स्थापित कीं। इन सब भागों में पूर्व दशकों में भारतीय क्रांतिकारियों द्वारा अपने कार्यों के लिए भूमि तैयार कर ली गयी थी। 8 दिसंबर 1941 को क्रांतिकारी कार्यों को गुप्त रूप से करना समाप्त हो गया। उन पर लगे समस्त प्रतिबंध और अवरोध एकदम हटा लिये गये और अब पूर्वी एशिया में भारत-भक्ति की एक खुली बाढ़-सी आ गयी।

सात/आठ दिसंबर की रात में जापान की सेना मलाया-थाईलैंड की सीमा पर उतरी और प्रात:काल ही वह मलाया में कोटा बरु की ओर बढ़ती हुई दिखाई दी। अंग्रेजों की पैदल सेना जापानी सेना को नहीं रोक सकी क्योंकि जापानी सेना जंगलों में युद्ध करने में प्रवीण थी और सदैव अंग्रेजी फ़ौज को धोखे में डाल देती थी। 41वीं पंजाब रेजिमेंट की प्रथम बटालियन ने जो उत्तरी मलाया में जित्रा स्थान पर नियुक्त थी तीन दिन तक वीरता से युद्ध किया परंतु अंत में आगे बढ़ती हुई जापानी फ़ौज के सामने उसे झुकना पड़ा।

सुभाष चंद्र बोस, अध्यक्ष, हरिपुरा कांग्रेस (1938) महात्मा गांधी के साथ

जवाहरलाल नेहरु हरिपुरा, गुजरात में सुभाष चंद्र बोस को पुष्पहार पहनाते हुए

पूर्व एशिया में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के जनक रास बिहारी बोस

आज़ाद हिंद फ़ौज के सर्वोच्च सेनापति की वर्दी में नेताजी

प्रथम आज़ाद हिंद फ़ौज,1942 के स्थापक जनरल मोहन सिह

सिंगापुर में आज़ाद हिंद फ़ौज का पुनरीक्षण करते हुए नेताजी, 1943

नेताजी भवन कलकत्ता (1946) में गांधी जी

दिल्ली में नेताजी की तलवार के राष्ट्रीय प्रस्तुतीकरण (1967) के अवसर पर
राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन

दिल्ली में आज़ाद हिंद दिवस,1968 के अवसर पर हुई जन सभा में प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी

8. प्रथम आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना

इसी समय 10 दिसंबर को ज्ञानी प्रीतमसिंह ने मेजर फ्यूजी वारा एवं अन्य जापानी सैनिकों के साथ बैंकाक के लिए हवाई जहाज द्वारा प्रस्थान किया और थाई-मलाया सीमा पार की तथा भारतीय सैनिक अधिकारियों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित किया। ज्ञानी प्रीतमसिंह और कप्तान मोहनसिंह के बीच जित्रा के समीप जंगल में महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक भेंट हुई। बिना अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है कि प्रथम आज़ाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) के विचार का जन्म इसी महत्वपूर्ण दिन को हुआ। कप्तान मोहनसिंह जित्रा में अपनी रेजिमेंट के वरिष्ठतम अधिकारी थे। वे पहले से ही आजाद हिंद फौज बनाने की बात भारत से विदेशी शासकों को निकालने के लिए सोच रहे थे। उन्होंने जापानी फौजों को ले जाती हुई कारों के साथ एक कार के अग्रभाग पर राष्ट्रीय तिरंगा लहराते देखा। उन्होंने जापानियों तक जाने का निश्चय किया। जब कप्तान मोहनसिंह बाबा ज्ञानीसिंह से मिले तो उन्होंने मोहनसिंह को भारतीय स्वतंत्रता लीग के उद्देश्यों को समझाया और उनसे लीग में सम्मिलित होकर आजाद हिंद फौज बनाने का आग्रह किया। दीर्घ वार्तालाप के पश्चात जिसमें मेजर फ्यूजी वारा भी सम्मिलित थे, कप्तान मोहनसिंह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए सहमत हो गये। उन्होंने और उनके 54 साथियों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन समर्पित करने का व्रत लिया। आज़ाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) सांकेतिक रूप से जित्रा में बनी और कप्तान मोहन सिंह इस मुक्ति फौज के जनरल आफिसर कमांडिग (जी.ओ.सी.) नियुक्त हुए। अंग्रेजों की भारतीय सेना के इतिहास में प्रथम बार उसी फौज के सैनिकों द्वारा लगाये गये आजाद हिंदुस्तान जिंदाबाद और आजाद हिंद फौज जिंदाबाद के गगनभेदी नारों से आकाश गूंज उठा। अब आगे बहुत से अधिकारी और सैनिक आई.एन.ए. में कप्तान मोहनसिंह के नेतृत्व में सम्मिलित हो गये। जापानी फौज अंग्रेजी सेना को सिंगापुर की ओर भगा रही थी और भारतीय सेना के अधिकारी और जवान पीछे बिना नेता के छूटे जा रहे थे। उन पीछे छूटे हुए सैनिकों को जापानी सेना बंदी कर लेती थी।

भारतीय स्वतंत्रता लीग की एक शाखा क्वालालंपुर में, जो संयुक्त मलाया राज्य की राजधानी थी, 16 जनवरी 1942 को बनायी गयी। इस समय वहां समस्त सेलेंकर

राज के भारतीय बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। ज्ञानी प्रीतमसिंह और मेजर फ्यूजी वारा ने एकत्रित जनसमूह के समक्ष भाषण दिया और श्रोताओं को विश्वास दिलाया कि जापानी सरकार भारतीयों को उनके देश को स्वतंत्र कराने में हर संभव सहायता देगी।

कप्तान मोहनसिंह ने बाद में पांच हजार भारतीय युद्ध बंदियों के बीच क्वालालंपुर के मुख्य शिविर में भाषण दिया और उन्हें बताया कि आई.एन.ए. का उद्देश्य भारत से अंग्रेजों को निकालना था और जापान सरकार ने इस उद्देश्य के लिए उन्हें सहायता देने का वचन दिया था। मोहनसिंह की अपील का तत्काल प्रभाव पड़ा और पांच हजार युद्ध बंदियों में से चार हजार सैनिकों ने आई.एन.ए. अपना ली। जनवरी के अंत तक पूर्ण मलाया में भारतीय स्वतंत्रता लीग का जाल फैल गया।

15 फरवरी 1942 को जापानियों ने सिंगापुर पर विजय पायी। उसी रात को भारतीय सैनिकों को आज्ञा दी गयी कि अगले दिन उन्हें प्रातः काल कैरर पार्क (सिंगापुर) में एकत्र होना है। युद्ध बंदी पार्क में 16 फरवरी को 2 बजे अपराह्न में एकत्र हुए। मलाया में अंग्रेजी सैन्य मुख्यालय के स्टाफ आफिसर लै.कर्नल हंट, मेंजर फ्यूजी वारा, कप्तान मोहनसिंह, भारतीय स्वतंत्रता लीग के अन्य मुख्य सदस्य और कुछ जापानी तथा भारतीय अधिकारी भारतीय सेना के सामने उपस्थित हुए। ले. कर्नल हंट ने भारतीय युद्ध बंदियों को संबोधित करते हुए कहा, "मै अंग्रेजी सरकार की ओर से तुम्हें जापान सरकार को सौंपता हूं। अब तुम जापान सरकार की आज्ञा का पालन उसी प्रकार करोगे जैसे अब तक हमारी आज्ञा का पालन करते थे।" तत्पश्चात मेजर फ्यूजी वारा माइक पर आये और बोले— "मै जापान सरकार की ओर से तुम्हें अपनी सेना में ग्रहण करता हूं और कप्तान मोहनसिंह जी.ओ.सी. को सौंपता हूं।" उन्होंने आगे कहा, "क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य का अब अंत होने वाला है इसलिए भारतवासियों को अब स्वतंत्र होने का अनोखा अवसर है। इस उपयुक्त अवसर पर अपने देश की स्वतंत्रता हेतु युद्ध करो। यद्यपि भारतवासी अंग्रेजी नागरिक हैं और इस प्रकार वैधानिक रूप से हमारे शत्रु हैं फिर भी जापान प्रत्येक प्रकार से उनकी सहायता करने को प्रस्तुत है। क्योंकि हम जानते है कि भारतवासी स्वेच्छा से अंग्रेजों के अधीन नहीं है। जापानी सेना तुमको शत्रु नहीं मानेगी। यदि तुम अंग्रेजी राष्टीयता का परित्याग कर दोगे तो वह तुम्हें मित्र मानने को तैयार है।"

कप्तान मोहनसिंह ने हिंदुस्तानी में बोलते हुए कहा, "अब पूर्व में अंग्रेजी अत्याचार के दिन समाप्त हो रहे हैं और उनके घृणित शासन का अब अंत होना ही चाहिए। जापानी सेना ने उन्हें मलाया और सिंगापुर से भगा दिया है और अब वे बर्मा में शीघ्रता से पीछे हट रहे है। अब भारतवर्ष स्वतंत्रता प्राप्ति के कगार पर खड़ा है।

प्रत्येक भारतवासी का यह कर्तव्य है कि इन राक्षसों को, जो भारतवासियों का खून इतने दशकों से पी रहे हैं, देश से निकाले। जापानियों ने हमें सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया है। अब हमारी यह जिम्मेदारी है कि हम अपने आपको संगठित करें। इसी उद्देश्य को लेकर हमने पूर्वी एशिया में भारतीय सैनिकों और नागरिकों से आई.एन.ए. का निर्माण किया है। मैं तुम सबसे इस सेना में सम्मिलित होने का निवेदन करता हूं। "सैनिकों ने कप्तान मोहनसिंह के भाषण के उत्तर में 'इंकलाब जिंदाबाद' और आज़ाद हिंदुस्तान जिंदाबाद" के नारे लगाकर उत्तर दिया और आई.एन.ए. में सम्मिलित होने की सहमति देते हुए अपने हाथ उठाये। इस समर्पण समारोह के तुरंत बाद मोहन सिंह ने युद्ध बंदियों में प्रचार भाषणों का आयोजन किया और उनमें से तीस हजार से अधिक ने आई.एन.ए में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। परंतु इस मुक्ति सेना को संगठित करने में कप्तान मोहनसिंह को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जब कि सामान्य सैनिक स्वेच्छा से आई.एन.ए. में सम्मिलित होने के इच्छुक थे। कुछ उनके वरिष्ठ अधिकारी आई.एन.ए. में सम्मिलित होने के इच्छुक थे। कुछ उनके वरिष्ठ अधिकारी आई.एन.ए. के निर्माण के एकदम विरुद्ध थे और उन्हें इसमें सम्मिलित न होने का परामर्श दे रहे थे। युद्ध बंदियों के साथ जापानियों का व्यहार पूर्णरूपेण संतोषजक नहीं था। राशन, कपड़े, और दवाइयां बहुत कम दी जा रही थी। कप्तान मोहनसिंह और भारतीय लीग को युद्ध बंदियों की आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई हो रही थी। जापानी भी अब युद्ध बंदियों को मनमानी आज्ञायें देने लगे थे। कुछ शरारती तत्वों ने हिंदू मुस्लिम विवाद उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था। अंग्रेजों के छिपे हुए पिट्ठुओं ने आई.एन.ए. की प्रगति में बाधा डालने का प्रयास किया। कुछ वी.सी.ओ. (वाइसराय कमीशंड आफिसर) एवं कुछ के.सी.ओ. (राजा के कमीशन प्राप्त आफिसर) का कप्तान मोहनसिंह से प्रत्यक्ष मतभेद था। उनका विश्वास था कि जापानी आई.एन.ए. का निर्माण अपने स्वार्थ के लिए कर रहे थे। कुछ अन्य ऐसे भी थे जो कप्तान मोहनसिंह के शासन में कार्य करना नहीं चाहते थे क्योंकि अंग्रेजी भारतीय सेना में उनका स्थान कहीं ऊंचा था। फिर भी मोहनसिंह ने इन कठिनाइयों पर काबू पाने का प्रयास किया और वे अपने ईमानदार विरोधियों को अपने उद्देश्य की सत्यता के प्रति आश्वस्त कर सके।

इन्होंने अपना मुख्यवास सिंगापुर में बनाया जहां लै. कर्नल एन.एस. गिल युद्धबंदी मुख्यालय के अधिकारी, लै. कर्नल जे.के. भोंसले एडजूटेंट और क्वाटर मास्टर जनरल तथा लै. कर्नल ए.सी. चटर्जी चिकित्सा सेवा निदेशक उनके सहायक थे।

9. सिंगापुर, टोकियो और बैंकाक के सम्मेलन

आई.एन.ए. के आध्यात्मिक प्रशिक्षण का उद्देश्य वर्ग में उत्तरदायित्व एवं सम्मान की उच्च भावना उत्पन्न करना था। उन्हें जाति एवं धर्म के ऊपर अपने को पहले भारतीय समझने की शिक्षा दी गई थी। शनैः-शनैः पृथक रसोई घर और अन्य पारस्परिक धार्मिक अवरोध समाप्त कर दिये गये। कांग्रेस के तिरंगे को आई.एन.ए. के राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपना लिया गया।

ज्ञानी प्रीतमसिंह ने सिंगापुर पहुंचकर तुरंत मलाया स्थित समस्त भारतीयों की भारतीय स्वतंत्रता लीग बनायी। एन. राघवन इसके अध्यक्ष बने। युद्ध के पूर्व राघवन पिनांग में बैरिस्टर के रूप में वकालत करते थे। स्वतंत्र भारत में राघवन चीन और फ्रांस में क्रमशः राजदूत नियुक्त हुए।

9 मार्च 1942 को मलाया और थाईलैंड के भारतीय स्वतंत्रता लीग के प्रतिनिधि सदस्यों के सिंगापुर में हुए एक सम्मेलन में स्वामी सत्यानंद पुरी ने बताया कि उन्होंने 2 फरवरी, 1942 को जर्मनी में सुभाष चंद्र बोस को तार भेजा था और उन्हें पूर्वी एशिया में आकर आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने का निमंत्रण दिया था। सुभाष ने यह बात स्वीकार कर ली थी।

सिंगापुर का यह सम्मेलन शंघाई, मलाया, हांगकांग एवं थाइलैंड के प्रतिनिधियों के वृहद सम्मेलन का प्रारंभिक रूप था। यह बड़ा सम्मेलन टोकियो में जापानी अधिकारियों से भारत की स्वतंत्रता में उनके सहयोग की शर्तों पर विचार करने के लिये किया गया था। सभापति राघवन के अतिरिक्त बाबा अमरसिंह, ज्ञानी प्रीतमसिंह, स्वामी सत्यानंद पुरी, के.पी.के. मेनन, कप्तान मोहनसिंह, लें. कर्नल गिल एवं मेजर एन. जैड कियानी ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। मेजर कियानी बाद में मेजर जनरल बने और सुप्रीम कमांडर सुभाष चंद्र की देखरेख में उन्होंने आई.एन.ए. की प्रथम डिवीजन का संचालन किया। सिंगापुर के सम्मेलन में एक निर्णय यह लिया गया कि सुभाष से टोकियो आने का निवेदन किया जाए और उन्हें पूर्वी एशिया में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व संभालने को कहा जाए।

टोकियो सम्मेलन में एक हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के कारण खिन्नता रहीं। इसमें चार प्रमुख प्रतिनिधि स्वामी सत्यानंद पुरी, ज्ञानी प्रीतम सिंह, कप्तान मोहम्मद

अकरम जो कप्तान मोहनसिंह के दाहिने हाथ थे और नीलकांत अय्यर जो राघवन के विश्वस्त साथी थे सवार थे। उन्होंने सैगोन 13 मार्च 1942 को छोड़ा था, तत्पश्चात् उनका कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ।

टोकियो सम्मेलन रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में 28 मार्च को हुआ। इस सम्मेलन के लिए जापान के प्रधान मंत्री जनरल टोजों ने यह संदेश भेजा कि जापान सरकार यह आशा करती है कि भारतीय स्वयं अंग्रेजी राज्य को समाप्त करेंगे एवं स्वतंत्र भारत का निर्माण करेंगे। संदेश में यह भी कहा गया था कि जापान सरकार की उनके इस प्रयास के प्रति सहानुभूति है और इस संबंध में वह हर संभव सहायता देने में भी नहीं हिचकिचायेगी।

जापान सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कर्नल इवाकुरो ने, जो बाद में जापान सरकार और भारतीय आंदोलनकारियों के बीच समन्वय संगठन के प्रमुख बने, इस सम्मेलन में भाग लिया।

इस सम्मेलन में बहुत से प्रस्ताव पारित हुए। एक प्रस्ताव में कहा गया था कि एकता, निष्ठा, एवं त्याग ही आंदोलन के आदर्श होंगे। दूसरे प्रस्ताव में जापान सरकार से भारत के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने की एवं भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हर संभव सहायता देने की नियामानुसार घोषणा करने की प्रार्थना की गयी थी। सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया कि जापान भारत की पूर्ण प्रभुसत्ता स्वीकार करेगा एवं उसकी पूर्ण स्वतंत्रता का वचन देगा तथा भारत का भावी संविधान भारत के नागरिकों के प्रतिनिधि स्वयं बनायेंगे। सम्मेलन ने एक निर्वाचित परिषद बनाने का निश्चय किया और इस परिषद के अंतरिम अध्यक्ष के पद पर रासबिहारी बोस को नियुक्त किया। यह भी निश्चय हुआ कि इस सम्मेलन के प्रस्तावों की पुष्टि बैंकाक में होने वाले पूर्वी एशिया की लीग के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में की जायेगी।

जैसा कि टोकियो में निश्चय किया गया था जापान, मानचूको, हांगकांग, बर्मा, बोर्नियो, जावा, मलाया, थाईलैंड, शंघाई, मनीला, एवं हिंदचीन के इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के प्रतिनिधियों का एक सप्ताह का सम्मेलन 15 जून से बैंकाक में हुआ। इस सम्मेलन में टोकियो के प्रस्तावों की पुष्टि की गयी। इन प्रस्तावों में वह प्रस्ताव भी था जिसके द्वारा जापान सरकार से अंग्रेजी के भारत से चले जाने के बाद भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के वचन की अधिकृत घोषणा करने का निवेदन किया गया था। इस सम्मेलन में एक कार्यकारिणी भी बनी जिसके अध्यक्ष रासबिहारी बोस और सदस्य राघवन, जनरल मोहनसिंह, के.पी.के. मैनन और कर्नल जी.क्यू. गिलानी नियुक्त हुए। इस कार्यकारिणी को समस्त क्षेत्रों की स्वतंत्रता लीग एवं आज़ाद हिंद फ़ौज

पर नियंत्रण रखने का अधिकार दिया गया। सम्मेलन द्वारा भी सुभाष चंद्र बोस को पूर्वी एशिया पहुंचने की सुविधा देने के संबंध में अपने प्रभाव का प्रयोग करने का निवेदन किया गया।

बैंकाक सम्मेलन के तुरंत पश्चात लीग संगठन एवं आई.एन.ए. क्रियाशील हो गये। परिषद का मुख्यालय बैंकाक में एवं आई.एन.ए. का सिंगापुर में था। लीग संगठन में विभिन्न विभागों के माध्यम से परिषद का कार्य चलाया जाता था। आई.एन.ए. में युद्ध सैनिकों का ग्रुप, गांधी ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड, आज़ाद ब्रिगेड, एस.एस. ग्रुप, गुप्तचर विभाग, सैनिक औषधालय, चिकित्सा, प्राथमिक सहायता कोर, इंजीनियरिंग कंपनी, सैनिक प्रचार अंग एवं सामग्री लाने वाले ग्रुप सम्मिलित थे।

पहले जापानी समन्वय कार्यालय मेजर फ्यूजी वारा के अंतर्गत था जिसे फ्यूजी किकान (कार्यालय) भी कहा जाता था। तत्पश्चात कर्नल इवाकुरो के नीचे यह संपर्क कार्यालय आ गया और इसे इवाकुरो किकान कहने लगे। मेजर फ्यूजी वारा ने अधिकांश भारतीयों को आई.एन.ए. के प्रारंभ से ही अपनी ईमानदारी का विश्वास दिलाया था। उनके द्वारा हुई रिक्ति को कर्नल इवाकुरो सुगमता से पूरी नहीं कर सकते थे। कर्नल इवाकुरो सिंगापुर में एक ओर लीग एवं आई.एन.ए. तथा दूसरी ओर टोकियो में जापान सरकार के बीच स्थानीय समन्वय अधिकारी के रूप में अपने भूतपूर्व लोकप्रिय अधिकारी की भाँति संबंध स्थापित नहीं कर सके।

10. संकट और आज़ाद हिंद फ़ौज का विघटन

जून 1942 में हुए बैंकाक सम्मेलन के बाद छह मास में ही धीरे-धीरे सर्वत्र स्थिति बिगड़ने लगी। इवाकुरो किकान (संपर्क कार्यालय) टोकियो एवं बैंकाक सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के अनुसार जापान सरकार से अधिकृत घोषणा प्राप्त करने में असफल रहा। अत: पारस्परिक अविश्वास एवं गलत धारणायें बढ़ने लगीं। भारतीयों की ओर से बार-बार किकान से अधिकृत घोषणा प्राप्त करने का निवेदन किया जाता था परंतु प्रत्येक बार विफलता ही मिलती थी। जापान की ओर से जो सामग्री दी जाती थी, आई.एन.ए. उसकी मात्रा एवं गुणों से असंतुष्ट थी। बर्मा में जापानियों का दृष्टिकोण लीग संगठन के प्रति घृणापूर्ण था। बर्मा से अंग्रेजों के निष्कासन के पश्चात जापानी सेना ने विस्थापित भारतीयों की संपत्ति के साथ शत्रु संपत्ति की तरह व्यवहार किया। यह उस समझौते के विपरीत था जो भारतीयों की संपत्ति के संबंध में पहले हुआ था। रंगून में भारतीयों और जापानियों के बीच एक दुखद सम्मेलन में एक जापानी ने कहा, 'हम तुमको कठपुतली देखना नहीं चाहते। यदि हम ऐसा करें भी तो कठपुतली होने में क्या हानि है? कठपुतली क्यों बुरी है?' जिस व्यक्ति ने यह कहा था वह एक छोटा अधिकारी था परंतु जो कुछ उसने कहा था उससे अन्य गैर-जिम्मेदार जापानियों के मन की बात भी प्रकट होती थी।

टोकियो द्वारा घोषणा करने की अनिच्छा के संबंध में कर्नल इवाकुरो और अन्य दूसरों ने सफाई देने का प्रयत्न किया परंतु इससे कार्य परिषद के अध्यक्ष रासबिहारी बोस की स्थिति कमजोर हो गई। जापानियों द्वारा आई.एन.ए. एवं लीग को सहायता देने के पीछे वास्तविक उद्देश्य अब परिषद के अन्य सदस्यों एवं सर्वसाधारण को स्पष्ट होने लगे। परंतु रासबिहारी के हृदय में भारत की स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा की ज्योति पहले की तरह जलती रही। एक भारतीय के रूप में उनकी अमिट देशभक्ति के संबंध में किसी को लेषमात्र भी संदेह नहीं था परंतु कुछ भारतीयों के मन में यह संदेह अवश्य था कि जापान में 30 वर्ष के प्रवास, वृद्ध आयु, कमजोर स्वास्थ्य एवं मृदु व्यवहारी होने के कारण जापानियों के गैर-समझौता पूर्ण रुख से उत्पन्न खिंचाव को क्या वे सहन कर पायेंगे? कार्य परिषद जापानियों से विमुख होती जा रही थी। दूसरे सदस्य अपने अध्यक्ष से दूर होते जा रहे थे। जनरल मोहनसिंह एवं रासबिहारी

बोस जापानियों से निरंतर दूर होते जा रहे थे। समस्त परिषद और आई.एन.ए. के जनरल मोहन सिंह (जी.ओ.सी.) टोकियो द्वारा औपचारिक घोषणा न करने के कारण एवं आई.एन.ए. के साथ दुर्व्यवहार से जापानियों के विरुद्ध हो गये। दोनों अब टकराव के पथ पर थे। वास्तविक टकराव अब दूर न था। अध्यक्ष और राघवन के अतिरिक्त कार्य परिषद के अन्य सदस्यों ने परिषद से त्याग-पत्र दे दिया। परिषद् की सहमति बिना प्राप्त किए ही जनरल मोहनसिंह की इच्छा के विरुद्ध जापानी आइ.एन.ए. को मनमानी आज्ञा देने लगे और उसके कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। इससे एक अत्यंत संकट की स्थिति आ गई और जापानियों ने जनरल मोहनसिंह को सिंगापुर में 29 दिसंबर,1942 को बंदी बना लिया और उन्हें एक समीपस्थ टापू में भेज दिया। यहां वे दिसंबर 1943 तक रहे। तत्पश्चात् उन्हें सुमात्रा भेजा गया जहां वे युद्ध समाप्ति तक रहे। अंग्रेज उन्हें सिंगापुर ले आए और अंत में नवंबर 1945 में दिल्ली लाकर उन्हें बिना शर्त मई 1946 में मुक्त कर दिया।

अपने बंदी होने से पूर्व ही जनरल मोहनसिंह ने आई.एन.ए. के सैनिकों को बता दिया था कि यदि वे उनसे पृथक कर दिए जाएं तो आई.एन.ए. स्वयं समात्त हो जायेगी। 29 दिसंबर 1942 को उनके बंदी हो जाने के साथ प्रथम आई.एन.ए. भी समाप्त हो गई। बचे हुए एक मात्र सदस्य, राघवन ने भी कार्य परिषद् से त्याग-पत्र दे दिया। अब रासबिहारी बोस अकेले रह गए।

छह मास से निरंतर बढ़ते हुए संदेह, अविश्वास, धोखाधड़ी, अकुशलता तथा जापानियों की निष्ठा में अविश्वास का अंत प्रथम आई.एन.ए. के विघटन में हुआ। इस संकट के पश्चात् कुछ समय तक अव्यवस्था एवं अस्तव्यस्तता फैली रही।

नागरिकों की संस्था की ओर से राघवन के उत्तराधिकारी डा. लक्षुमिया और सेना की ओर से लै. कर्नल जे. के. भोंसले की सहायता से रासबिहारी बोस पुनः लीग और आई.एन.ए. के निर्माण में लग गए।

रासबिहारी बोस को स्पष्ट प्रतीत हुआ कि कुछ ही समय में सुभाष चंद्र बोस पूर्वी एशिया पहुंचकर आंदोलन और आई.एन.ए. का नेतृत्व करेंगे। अतः उन्होंने आई.एन.ए. और लीग को सुभाष को सौंपकर अपनी चिंता से मुक्त होने का निश्चय किया। उन्होंने मार्च 1943 में लीग के मुख्यावास को बैंकाक से सिंगापुर स्थानांतरित किया। पूर्व संकटों के आघात ने नागरिकों तथा सैनिकों को कुछ समय के लिए शक्तिहीन बना दिया था। उन्होंने आई.एन.ए. एवं लीग की स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से रात-दिन कार्य किया।

लै.कर्नल भोंसले सैनिक ब्यूरो के निदेशक नियुक्त हुए तथा लै. कर्नल एम.जैड. कियानी सेना के कमांडर नियुक्त किए गए।

रासबिहारी बोस ने 26 अप्रैल से 30 अप्रैल 1943 तक सिंगापुर में पूर्वी एशिया में निवास करनेवाले भारतीयों का एक और सम्मेलन किया जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव पारित हुए : "आज़ाद हिंद फौज भारतीय स्वतंत्रता लीग की सेना है और आई.एन.ए. के सब अधिकारी एवं सैनिक और लीग के सब सदस्य कुल मिलाकर लीग के प्रति उत्तरदायी हैं।" और "तुरंत भारतीय संविधान में इस प्रकार परिवर्तन किया जाए जिससे कि वह अपने युद्ध संबंधी कार्यों को शीघ्र एवं उत्तमता से संपादित कर सके।" इस संशोधित संविधान से रासबिहारी बोस को लगभग अधिनायकीय अधिकार मिल गये।

इस बात से संतुष्ट होने के पश्चात् कि लीग और आई.एन.ए. संकट के बाद भी जीवित हैं तथा उनमें इस सीमा तक पुन: जीवन आ गया है कि वे आत्मविश्वास के साथ किसी भी स्थिति का सामना कर सकती है, रासबिहारी बोस जून 1943 में टोकियो के लिए रवाना हुए परंतु साधारण जनता को अब भी लीग और आई.एन.ए. की अंत:शक्ति में संदेह था और अब उनकी आशायें बैंकाक सम्मेलन में सुभाष चंद्र बोस को पूर्वी एशिया में आने के लिए दिए गए निमंत्रण पर एवं उनके आने पर आंदोलन का नेतृत्व संभालने पर लगीं हुई थी।

11. पूर्व एशिया में नेताजी का आगमन

जर्मनी एवं जापान की सरकारों से बीच अनिवार्य बातचीत के फलस्वरूप नेताजी सुभाष चंद्र बोस आबिद हसन के साथ 8 फरवरी 1943 को प्रात:काल कील में एक पनडुब्बी में सवार हुए। मेडागास्कर से 400 मील की दूरी पर हिंद महासागर में जापान की पनडुब्बी जर्मनी नौका से मिली और 28 अप्रैल को वह और उनके साथी उसमें सुरक्षित स्थानांतरित कर दिये गये। वे सुमात्रा के उत्तरी तट पर 6 मई को उतरे और वहां एक सप्ताह इंताजार करने के पश्चात् हवाई जहाज से 16 मई 1943 को टोकियो पहुंचे। यह वास्तव में सुभाष के जीवन में एक महत्वपूर्ण दिन था। क्योंकि शत्रुओं से घिरे हुए समुद्र में पनडुब्बी की खतरनाक यात्रा 90 दिन पश्चात् उस दिन समाप्त हुई थी। जब नेताजी सुमात्रा उतरे तो उन्हें एक सुखद आश्चर्य हुआ। पहला व्यक्ति जिसने वहां उनका अभिवादन किया उनका पुराना मित्र कर्नल यामामोटो था जो बर्लिन में जापानी राजदूत का सैनिक सहायक था और जिसने उनकी पनडुब्बी यात्रा के लिए सक्रिय प्रयास किया था। अब कर्नल यामामोटो समन्वय कार्यालय के नये मुख्य अधिकारी थे।

टोकियो पहुंचने के तुरंत बाद नेताजी ने जापान के अधिकारियों से आवश्यक बातचीत की। अपने प्रवास के दौरान वह जापान के प्रधान मंत्री जनरल तोजो से दो बार मिले। उनसे मिलकर वह अपने देश को स्वतंत्र कराने की योजना के संबंध में एक आम समझौते पर पहुंचे और जापान उनकी किस हद तक सहायता करेगा इसका ज्ञान भी उन्होंने प्राप्त किया। प्रधान मंत्री जनरल तोजो ने नेताजी को जापानी डायट (संसद) में आमंत्रित किया और वहां उन्होंने नेताजी की ओर देखकर डायट से कहा, "भारत की स्वतंत्रता के लिए हम हर संभव सहायता देने के लिए प्रस्तुत है।"

जब नेताजी इस बात से संतुष्ट हो गए कि कार्य के लिए भूमि तैयार हो गयी थी तब जापान की जनता और शेष संसार को उनके नाटकीय ढंग से जापान पहुंचने की बात प्रथम बार बताई गयी।

पूर्वी एशिया में रहने वाले भारतीयों को हार्दिक प्रसन्नता हुई। संपूर्ण स्थिति एकदम परिवर्तित हो गयी। पूर्वी एशिया में सुभाष की उपस्थिति की घोषणा ने वातवरण

में विद्युत प्रभाव उत्पन्न किया। भारतीयों ने अनुभव किया कि अविश्वसनीय घटना घट गयी। अब एक गतिशील क्रांतिकारी स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर संभालेगा और भारत में अंग्रेजी किले के पूर्वी फाटक को तोड़ेगा। इससे भारतीयों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

टोकियो रेडियो से पूर्वी एशिया स्थित भारतीयों को संबोधित करते हुए एक प्रसारण में नेताजी ने कहा, "भारत के अंदर आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित अंग्रेजी सेना से निबटने हेतु देशवासियों लिए सशस्त्र क्रांति संगठित करना संभव नहीं है। अतः इस कार्य का भार देश के बाहर रहने वाले भारतीयों के कंधों पर है—विशेषकर उन भारतीयों के कंधों पर जो पूर्व एशिया में निवास करते हैं। समय आ गया है, जब प्रत्येक देशभक्त भारतवासी को युद्ध स्थल की ओर बढ़ना है। जब स्वतंत्रता प्रेमी भारतीयों का खून बहेगा तो भारत स्वतंत्रता प्राप्त करेगा।"

टोकियो से एक बाद के प्रसारण में नेताजी ने अपने उन देशवासियों की ओर संकेत करते हुए, जिन्होंने अंग्रेजी संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की थी और जो अंग्रेजी प्रचार से प्रभावित थे कहा, "मैं अपने उन देशवासियों से कहूंगा कि वे मुझ में विश्वास रखें क्योंकि शक्तिशाली अंग्रेजी सरकार जिसने मुझको जीवन भर कष्ट दिया है और मुझे 11 बार बंदी बनाया है मुझे अपने निश्चय से विचलित नहीं कर सकी है। संसार की कोई शक्ति ऐसा नहीं कर सकती। और जब चतुर, चालाक साधन संपन्न अंग्रेज राजनीतिज्ञ मुझे बहका एवं भ्रष्ट न कर सके तो अन्य ऐसा करने की आशा कैसे कर सकते हैं। मैं भारत की सीमा से अब दूर नहीं हूं। जनवरी 1941 से कोई भी शक्ति मेरी गति को नही रोक सकी है और कोई भी शक्ति मुझे राष्ट्र के लिए लड़ाई के इस अंतिम चरण में एक बार फिर सम्मिलित होने के लिए भारत की सीमा पार करने से नहीं रोक सकती।"

नेताजी सुभाष चंद्र बोस रासबिहारी बोस के साथ टोकियो से सामबवांग (सिंगापुर) हवाई अड्डे पर 2 जुलाई 1943 को प्रातः उतरे और वहां से मोटर द्वारा सिंगापुर के मुख्य हवाई अड्डे गए जहां भारतीय स्वतंत्रता सेना, आई.एन.ए. के अधिकारी एवं उत्साही व्यक्तियों की एक बड़ी भीड़ उनके स्वागत के लिए प्रस्तुत थी।

श्वेत रंग की रेशम का सूट पहने और अपने बायें हाथ में फैल्ट हैट पकड़े नेताजी पूर्वी एशिया में आई.एन.ए. का सम्मानसूचक अभिवादन स्वीकार करने के लिए सिंह गति से चले। जब नेताजी ने उन्हें 'साथियो और दोस्तो' कहकर संबोधित किया तो समस्त सेना में आनंद ही लहर दौड़ गयी। यह आनंद की लहर उस समय और अधिक तीव्र हुई जब नेताजी ने कहा कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों से तलवार हाथ में लेकर युद्ध करने के पुराने स्वप्न को साकार करेंगे। आई.एन.ए.

शिविर में उस समय हलचल फैल गई जब सैनिक सम्मान गारद के पश्चात् अपनी बैरकों को लौटे और वहां उन्होंने बड़े उत्साह के साथ नेताजी के सूक्ष्म संदेश का सार सुनाया। मुक्ति सेना के साथ प्रथम संपर्क के बाद से ही पूर्वी एशिया में आई.एन.ए. के अफसरों और सैनिकों ने निरंतर उनकी प्रशंसा की एवं उनमें पूर्ण निष्ठा व्यक्त की।

दो दिन पश्चात् 4 जुलाई 1943 को कैथे सिनेमा हाल में पूर्व एशिया के पांच हजार भारतीयों के समक्ष नेताजी ने पुराने क्रांतिकारी रासबिहारी बोस से पूर्व एशिया में चलाये जा रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का विधिवत् नेतृत्व ग्रहण किया। अपने उत्कृष्ट एवं विनीत भाषण के साथ रासबिहारी ने युवक एवं क्रियाशील सुभाष के हाथों में नेतृत्व सौंपा।इस नेतृत्व को ग्रहण करते हुए नेताजी ने कहा, ''अपनी फौजों का कुशलता से संचालन करने के लिए मैं स्वतंत्र भारत की अस्थाई सरकार बनाने का विचार रखता हूं। इस अस्थायी सरकार का कर्तव्य होगा कि वह भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई को सफलता प्राप्ति तक लड़ती रहे।

12. तूफानी नेतृत्व

जिस दिन से नेताजी ने रासबिहारी बोस से कार्यभार ग्रहण किया उसी दिन से वे अपने नये कार्य में जी-जान से लग गये। उस दिन से वे 25 मास निरंतर अंथक परिश्रम से कार्य करते रहे। इस अवधि के अंत में वे सैगोन से अपनी अंतिम ज्ञात यात्रा के लिए एक मध्यम श्रेणी के युद्ध-पोत में सवार हुए।

5 अप्रैल 1943 को उन्होंने सिंगापुर में टाउन हाल के सामने एक बड़े मैदान में आई.एन.ए. के अधिकारियों एवं सैनिकों से एक भव्य परेड में सलामी ली। खाकी वर्दी पहने हुए नेताजी श्रेणीबद्ध सैनिकों के बीच होते हुए चले और फिर उनको प्रेरणापद शब्दों में भाषण देने के लिए व्याख्यान स्थल पर आये। उन्होंने कहा, "भारत की मुक्ति सेना के सैनिको! आज मेरे जीवन का अति गौरवमय दिन है...। प्रत्येक भारतवासी को इस बात पर गर्व करना चाहिए कि यह सेना एक भारतीय के नेतृत्व में बनी है और ऐतिहासिक अवसर आने पर एक भारतीय के नेतृत्व में ही युद्ध के मैदान में उतरेगी...। तुम्हारा युद्ध का नारा होगा 'चलो दिल्ली' 'चलो दिल्ली'...। हमारा काम उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक हमारे अवशेष वीर सैनिकों की विजय परेड दिल्ली में लाल किले के मैदान में अंग्रेजी साम्राज्य की दूसरी श्मशान भूमि पर नहीं होगी।"

दूसरे दिन छह जुलाई को जापान के प्रधानमंत्री जनरल तोजो सिंगापुर कुछ समय के लिए आये और उसी मैदान में उन्होंने आई.एन.ए. की परेड देखी। उन्होंने मुक्ति सेना को उसकी चुस्ती के लिए बधाई दी।

तीन दिन पश्चात् सिंगापुर में एक उत्साहवर्धक सामूहिक रैली में भाषण देते हुए नेताजी ने संपूर्ण सेना से अंतिम युद्ध के लिए तैयार होने हेतु भावुक अपील की: "मुझे तीन लाख सैनिक और तीन करोड़ डालर चाहिए। मुझे एक मृत्यु से न डरने वाली भारतीय महिलाओं का दल भी चाहिए जो 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगना झांसी की रानी की तरह युद्ध में तलवार चला सके।"

उन्होंने अपना समय भारतीय स्वतंत्रता लीग एवं आजाद हिंद फौज के कार्यालयों को देखने के लिए बांट लिया और दोनों कार्यालयों में नियमित रूप से जाने लगे। उन्होंने लीग और आई.एन.ए. की संस्थाओं का विस्तार एवं पुनर्गठन किया। लीग

के मुख्यालय में निम्नलिखित विभाग कार्यरत थे-सामान्य विभाग, वित्त, सूचना और प्रचार, गुप्तचर विभाग, भर्ती एवं प्रशिक्षण। नेताजी ने इन विभागों को बल प्रदान किया और सात नये विभाग बढ़ाये। स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण, महिलाओं का विषय, राष्ट्रीय शिक्षा एवं संस्कृति, पुनर्निर्माण विभाग, आपूर्ति, विदेश, आवास तथा परिवहन।डा. लक्ष्मी स्वामीनाथन, जो बाद में झांसी की रानी रेजिमेंट की कमांडेंट बनी, को महिला विभाग का अध्यक्ष बनाया।

आई.एन.ए. में एक नवीन उत्साह दौड़ गया। पुनर्गठित आई.एन.ए. का एक प्रमुख लक्षण यह था कि उसके दैनिक कार्यों में अब 'एकता, निष्ठा एवं त्याग' के उच्चतम आदर्श की भावना उदय हुई थी। समस्त सैनिकों में एक उच्च कोटि की जातीय एकता की भावना जाग्रत हुई और सभी के लिए एक भोजनालय की व्यवस्था की गयी जो इस जातीय एकता एवं भ्रातृभावना के प्रतीकों में से एक था।

नेताजी ने मलाया का एक तूफ़ानी दौरा किया और उस क्षेत्र में भारतीयों की सैकड़ों सभाओं में व्याख्यान दिये। इस दौरे के फलस्वरूप भारतीय जनशक्ति पूर्णतया सक्रिय हो गयी और नेताजी के पास धन भी आने लगा। समस्त पूर्वी एशिया में लीग संस्थान ने बहुत तेजी से कार्य किया।

आई.एन.ए. में सम्मिलित होने के इच्छुक स्वयंसेवकों की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए शिविर खोले गये। हजारों की संख्या में अपने घरों एवं व्यवसाय को छोड़कर आये हुए देशभक्त भारतीय युवकों को, जो भारत की स्वतंत्रता की सशस्त्र लड़ाई में अपने जीवन की आहुति देने के लिये प्रस्तुत थे, प्रशिक्षण देने हेतु शस्त्र एवं अन्य आवश्यक सामग्री जुटाने की समस्या थी। मलाया और सिंगापुर में समस्त भारतीय जनता में यह उत्साह लगभग पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।

नेताजी को संतोष था कि तीन मास में आई.एन.ए. पूर्णरूपेण पुनर्गठित होकर युद्ध करने की स्थिति में थी। वे इस बात से भी संतुष्ट थे कि पूर्व एशिया में भारतीय नागरिक पूर्णरूप से सक्रिय होने के लिए तैयार थे। जैसा कि उन्होंने जुलाई में आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करते समय अपने भाषण में कहा था अब उन्होंने दूसरा स्वाभाविक कदम स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनाने के लिए उठाया।

उन्होंने केवल चार मास में संदेह, अविश्वास, एवं अस्त-व्यस्त प्रयासों के वातावरण को देशभक्ति, पूर्ण विश्वास एवं भारत की स्वतंत्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने को तत्पर रहने की भावना में परिवर्तित कर दिया। आई.एन.ए. का आदर्श 'एकता, विश्वास और त्याग' अब आश्चर्यजनक वास्तविकता बन गया।

सिंगापुर में उतरने के चार मास से भी कम समय में नेताजी ने पूर्व में जापान से लेकर पश्चिम में बर्मा तक भारतीयों के संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन को सुदृढ़ कर

दिया था। आई.एन.ए. अब एक शक्तिशाली इकाई के रूप में संगठित थी और युद्ध स्थल की ओर प्रयाण के लिए तैयार थी। सामान्य नागरिक देश की स्वतंत्रता के लिए सब कुछ त्यागने के लिए प्रस्तुत थे, यहां तक कि वे स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना जीवन देने को भी तैयार थे। सितंबर में हुई एक जनसभा में नेताजी के इस संकेत ने कि वर्ष के अंत तक आई.एन.ए. भारत भूमि पर खड़ी होगी, उच्च आशाओं को प्रस्फुटित किया। संभवत: उन्हें जापानियों से कुछ गोपनीय सूचना प्राप्त हुई थी जिसके कारण नेताजी ने यह संकेत दिया था। इस तरह नेताजी का क्रियाशील नेतृत्व आंदोलन को बहुत तेजी के साथ शिखर की ओर ले जा रहा था।

13. ऐतिहासिक घोषणा

21 अक्तूबर 1943 भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास में स्वर्णिम दिन माना जायेगा। इस अविस्मरणीय दिन पूर्वी एशिया के समस्त भागों के भारतीय स्वतंत्रता लीग के प्रतिनिधि सिंगापुर के कैथे सिनेमा हाल में स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना की ऐतिहासिक घोषणा सुनने के लिए एकत्र हुए। बड़ा गंभीर अवसर था। हाल खचाखच भरा था। खड़े होने के लिए एक इंच स्थान खाली नहीं था। लोग चुपचाप आशा लगाये प्रतीक्षा कर रहे थे। घड़ी में साढ़े चार बजे। मंच पर अपने स्थान पर नेताजी खड़े हुए। उन्होंने भावनाओं से भरे हाल में धीरे-धीरे नपी-तुली आवाज में घोषणा पड़ी। श्रोताओं ने पूर्ण शांति के साथ उनके प्रत्येक शब्द को सुना। यह घोषणा 1500 शब्दों की थी जो नेताजी ने दो दिन पहले संपूर्ण रात्रि में एक ही बार में लिखी थी। इस घोषणा में 1857 से भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई का अत्युत्तम सर्वेक्षण था। इस घोषणा में कहा गया था कि 'अस्थायी सरकार का यह कार्य होगा कि वह भारत से अंग्रेजों और उनके मित्रों को निष्कासित करे। अस्थाई सरकार का यह भी कर्तव्य होगा कि भारतीयों की इच्छानुकूल और उनके विश्वास की आज़ाद हिंद की स्थाई सरकार का निर्माण करे।

घोषणा का एक प्रेरणापूर्ण अपील के साथ समापन हुआ—"ईश्वर के नाम पर, पूर्वजों के नाम पर जिन्होंने भारतीयों को एक सूत्र में बांधकर एक राष्ट्र बनाया, उन स्वर्गवासी वीरों के नाम पर जिन्होंने शौर्य एवं आत्म-बलिदान की परंपरा बनायी, हम भारतवासियों से देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध करने और भारतीय झंडे के नीचे आने का आह्वान करते हैं।"

घोषणा आज़ाद हिंद सरकार की ओर से निम्नलिखित द्वारा हस्ताक्षरित थी—

सुभाष चंद्र बोस (राज्याध्यक्ष, प्रधान मंत्री, युद्ध एवं विदेशमंत्री)

कप्तान श्रीमती लक्ष्मी (महिला संगठन)

एस.ए. अय्यर (प्रचार एवं प्रसारण)

लै. कर्नल ए.सी. चटर्जी (वित्त)

लै. कर्नल अजीज़ अहमद, लै. कर्नल एन.एस. भगत, लै. कर्नल जे.के. भोंसले, लै. कर्नल गुलजार सिंह, लै. कर्नल एम.जैड कियानी, लै. कर्नल ए.डी. लोगनादन,

लै. कर्नल एहसान कादिर, लै. कर्नल शाहनवाज (सशस्त्र सेना के प्रतिनिधि), ए.एम. सहायक सचिव (मंत्री स्तर), रासविहारी बोस (उच्चतम परामर्शदाता) करीम गनी, देवनाथ दास, डी.एम. खान, ए. यलप्पा, जे.थीवी., सरदार इशर सिंह (परामर्शदाता), ए.एन. सरकार (कानूनी सलाहकार)।

संसार के सम्मुख आज़ाद हिंद की अस्थायी सरकार की घोषणा करने के पश्चात् भारत के प्रति निष्ठा की शपथ ली गयी। जब सुभाष निष्ठा की शपथ लेने खड़े हुए तो कैथे हाल में एक अत्यंत भावनामय अपूर्व दृश्य उपस्थित हुआ। जब नेताजी अपनी शपथ पढ़ने लगे तो वातावरण निस्तब्ध था—"ईश्वर के नाम पर मैं यह पावन शपथ लेता हूं कि भारत और उसके 38 करोड़ निवासियों को स्वतंत्र कराऊंगा।

इसके पश्चात् नेताजी रुक गये क्योंकि उनकी वाणी भावनाओं के कारण अवरुद्ध हो गयी। अश्रुधारा उनके गालों पर बह निकली, उन्होंने अपना रुमाल निकालकर आंसू पौंछें। संपूर्ण हाल में एकदम स्तब्धता छा गयी। उनके दुख एवं भावनाओं से अधिकांश उपस्थित व्यक्ति उद्वेलित हो उठे और उनकी आंखों से भी आंसू बह निकले। उस समय नेताजी यह भूल गये कि श्रोता उनके सामने थे, उस समय उनकी आंखों के सामने भूतपूर्व क्रांतिकारियों एवं भारत के अंदर लाखों स्वतंत्रता सेनानियों, जो अब भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित विदेशी सेना के विरुद्ध वीरता से लड़ रहे थे, का लंबा काफिला था। भावनाओं से अभिभूत नेताजी की वाणी अवरुद्ध हो गयी और वे अपनी शपथ आगे न पढ़ सके। भावना मुक्त होने पर धैर्य आया और उन्होंने पढ़ना आरंभ किया: "मैं सुभाष चंद्र बोस, अपने जीवन के अंतिम स्वांस तक स्वतंत्रता की पवित्र लड़ाई जारी रखूंगा।"

"मैं सदैव भारत का सेवक रहूंगा और 38 करोड़ भाइयों और बहिनों के कल्याण को अपना सर्वोच्च कर्तव्य समझूंगा।"

"स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चाद् भी मैं सदैव भारत की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपने रक्त की अंतिम बूंद बहाने को तैयार रहूंगा"।

जब नेताजी की शपथ समाप्त हुई तो वातावरण से खिंचाव एकदम समाप्त हुआ और श्रोता भावना मुक्त हुए तो वे भावातिरेक में हर्षध्वनि करने लगे जो कई मिनट तक प्रतिध्वनित होती रही। 'इंकलाब जिंदाबाद', 'आज़ाद हिंद जिंदाबाद' के गगनभेदी नारों से वातावरण गूंज उठा।

14. झांसी की रानी रेजिमेंट

आजाद हिंद की अस्थाई सरकार की घोषणा करने के पश्चात् नेताजी ने सिंगापुर में झांसी की रानी रेजिमेंट के लिए एक शिविर खोला। इस रेजिमेंट की संचालिका कप्तान लक्ष्मी नियुक्त हुई। समाज के प्रत्येक वर्ग की महिलाएं शिविर में लड़ाकू सैनिकों या नर्स अथवा रेजिमेंट में अन्य किसी उपयोगी कार्य के लिए स्वयं-सेविका का प्रशिक्षण लेने के लिए एकत्र होने लगीं। समृद्ध परिवार की कानवेंट शिक्षा प्राप्त युवतियां अपने अभिभावकों के सुरक्षित घरों को छोड़कर सैकड़ों की संख्या में शिविर में सम्मिलित हुईं। वे सैनिक प्रशिक्षण की कठिनाइयों को सहन करते हुए राईफल चलाने एवं संगीन का अभ्यास करने की शिक्षा ग्रहण करने की इच्छुक थीं। वे मुक्ति सेना के लड़ाकू सैनिक विभाग में सम्मिलित होने के लिए युवकों से उत्साह में किसी प्रकार पीछे न थीं। आज़ाद हिंद फ़ौज में झांसी की रानी रेजिमेंट पुरुषों की रेजिमेंट की सहयोगी टुकड़ी थी। जब जापानियों ने भारतीय युवतियों को आई.एन.ए. के पुरुष सैनिकों के साथ अस्त्र-शस्त्र पहने और युद्ध-स्थल पर जाने हेतु इच्छुक देखा तो वे पहले विस्मित हुए। जापानियों के मन में पूर्ण शंका थी और उन्हें यह विश्वास नहीं था कि झांसी की रानी रेजीमेंट निर्मित हो सकेगी। परंतु जब उन्होंने अपनी आंखों से युवतियों को कंधों पर बंदूक रखे, उत्साहपूर्वक मार्च करते हुए देखा तो उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया।

अक्तूबर 23/24 की रात को अस्थायी सरकार की मीटिंग नेताजी के निवास स्थान पर हुई और उसमें अंग्रेजों और उनके मित्र राष्ट्र अमेरिका के विरुद्ध युद्ध घोषणा करने का निर्णय लिया गया। विचार-विमर्श में लै. कर्नल लोगनादन ने युद्ध घोषणा में अमेरिका को ब्रिटेन के साथ शामिल करने पर आपत्ति की, परंतु नेताजी ने यह कहकर कि युद्ध अवधि में भारत में प्रभुत्व जमाये रखने में अमेरिका ब्रिटेन का सक्रिय सहयोगी है अपनी घोषणा को उचित बताया और उन्हें संतुष्ट किया। इस प्रकार आज़ाद हिंद सरकार अमेरिका की अप्रसन्नता से भयभीत नहीं हुई।

उसी दिन संध्या समय नेताजी ने आई.एन.ए. एवं भारतीय नागरिकों की विशाल रैली में सभी से शपथ ली कि वे भारत को मुक्त कराने के लिए अंग्रेज और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध में अपना सर्वस्व तन-मन-धन अर्पित करेंगे।

अस्थाई सरकार आई.एन.ए. एवं स्वतंत्रता लीग अब पूर्णरूप से कार्यरत होने के लिए तैयार थी। आई.एन.ए. में पुरुषों की एवं झांसी की रानी रेजीमेंट में स्त्रियों की भर्ती एवं प्रशिक्षण का कार्य पूरी रफ्तार से चल रहा था। पूर्व एशिया में धन एवं अन्य आवश्यक सामग्री का संग्रह किया जा रहा था। सिंगापुर, बैंकाक, रंगून सैगोन और टोकियो से आज़ाद हिंद रेडियो स्टेशन भारत की विभिन्न भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित कर रहा था। सिंगापुर से आज़ाद हिंद रेडियों केंद्रों से अंग्रेजी, हिंदुस्तानी, बंगला, तामिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, गुजराती, मराठी, पंजाबी, गोरखाली एवं पुश्तो भाषाओं में प्रसारण रात-रात भर होता था। आज़ाद हिंद सरकार अपने दैनिक एवं साप्ताहिक समाचार पत्र वहां के स्थानीय जनता के लिए विभिन्न भाषाओं में निकालती थी।

स्वतंत्रता युद्ध संचालित करने के साथ-साथ स्वतंत्र भारत की भावी सरकार के संबंध में नेताजी निरंतर योजना बनाते रहते थे। अस्थाई सरकार के पास अपनी सेना थी एवं सेना के लिए युवकों को शिक्षित करने की पर्याप्त सुविधा थी परंतु उनके पास अपनी नौ सेना एवं वायु सेना नहीं थी। अत: वे पूर्व एशिया में अपने युवकों को नौ सेना एवं वायु सेना का प्रशिक्षण नहीं दे सकते थे। अत: नेताजी ने स्वयं कुछ किशोर अवस्था के भारतीय लड़के चुनकर सिंगापुर से जापान नौ सेना एवं वायु सेना के प्रशिक्षण के लिए भेजे। ये 'टोकियो बायज', जैसे कि इन्हें नेताजी प्यार की भाषा में कहते थे, अपने प्रशिक्षण में अच्छा कार्य कर रहे थे। जब अगस्त 1945 में जापान ने एकदम आत्मसमर्पण कर दिया तो कैडेट प्रशिक्षण भी समाप्त हो गया और इन लड़कों को भारत भेज दिया गया।

सिंगापुर में आई.एन.ए. और एवं सरकार स्थापित करने के पश्चात् नेताजी 28 अक्तूबर को हवाई जहाज से टोकियो एक बृहद पूर्वी एशिया सम्मेलन में द्रष्टा के रूप में भाग लेने गए। वे वहां इस रूप में इस कारण गए क्योंकि वे सम्मेलन के निर्णयों में भारत को समभागी नहीं बनाना चाहते थे। वे भावी स्वतंत्र भारत को टोकियो सम्मेलन के निणयों एवं विचारों से अप्रभावित तथा मुक्त रखना चाहते थे।

इस सम्मेलन में प्रधानमंत्री जनरल तोजो ने घोषणा की कि जापान अंडमान व निकोबार द्वीपों, को जिन्हें उसने पूर्वी एशिया युद्ध में बहुत पहले जीता था आज़ाद हिंद की अस्थाई सरकार को सौंपने का निश्चय करता है। इस प्रकार आज़ाद हिंद सरकार को अपने पहले दो प्रदेश मिले जिनका नाम बाद में शहीद एवं स्वराज द्वीप रखा गया। लै. कर्नल ए.डी. लोगनादान को अस्थायी सरकार की ओर से उनका प्रथम भारतीय प्रशासक नियुक्त किया गया।

चीन और फिलपीन की यात्रा के पश्चात दिसंबर के अंत में सिंगापुर लौटने पर

नेताजी अंडमान गए जहां उन्होंने स्वतंत्र भारत के पहले प्रदेश में 31 दिसंबर 1943 को अपने पग रखे। भारत के अंग्रेज शासकों द्वारा निष्कासित भारतीय क्रांतिकारियों की पीढ़ियों के बलिदान से और बंदी के रूप में वहां निवास से यह भूमि पवित्र बन गयी थी। गत सितंबर में नेताजी ने प्रतिज्ञा की थी कि आई.एन.ए. स्वतंत्र भारत भूमि पर वर्ष के अंत तक पहुंच जाएगी। उनका अंडमान आगमन इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का प्रतीक था।

अंडमान जाने से पूर्व नेताजी ने सिंगापुर में एक मंत्रिमंडलीय उपसमिति नियुक्त की थी जिसका कार्य पूर्व एशिया में भारतीयों की भाषा, वेशभूषा, भोजन, अभिवादन, चिन्ह एवं रीति-रिवाजों में एकता लाकर राष्ट्रीय स्तर पर संगठित करना था। नेताजी आंदोलन के इस रूप को भारत में स्थायी एकता स्थापित करने की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व देते थे।

इस मंत्रिमंडलीय उपसमिति ने भावी राष्ट्रीय एकता की दिशा में प्रथम कार्य भारत की सामान्य भाषा 'हिंदुस्तानी' निर्धारित की। सभी भारतीयों का अभिवादन 'जयहिंद', राष्ट्रीय झंडा कांग्रेस का तिरंगा, राष्ट्रगान 'शुभ सुख चैन', सिंह राष्ट्रीय चिन्ह निर्धारित किए एवं जब तक सफलता के पश्चात् आंदोलन की समाप्ति न हो जाए 'चलो दिल्ली' राष्ट्रीय उद्घोष एवं 'आज़ाद हिंद जिंदाबाद', 'इंकलाब जिंदाबाद', 'नेताजी की जय' राष्ट्रीय नारे निर्धारित हुए।

15. आज़ाद हिंद फ़ौज ने प्रथम गोली दागी

अंडमान से नेताजी ने हवाई जहाज द्वारा बर्मा के लिए प्रस्थान किया और वहां जाकर अस्थाई सरकार, भारतीय स्वतंत्रता लीग तथा आई.एन.ए. की सर्वोच्च कमान के मुख्यालय जनवरी 1944 के प्रथम सप्ताह में रंगून स्थानातरित किए। इस प्रकार दो मुख्यालय बने – एक रंगून में और दूसरा पीछे का मुख्यालय सिंगापुर में रहा।

सरकार, लीग एवं आई.एन.ए. के साथ नेताजी के मुख्यालय का बर्मा स्थानांतरण आंदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। भारत बर्मा से सीमा की दृष्टि से ही पृथक था। यहां से नेताजी और मुक्ति सेना के लिए भारत के पूर्वी द्वार तक पहुंचना और अंग्रेजों को अपनी मातृभूमि से बाहर निकालने के लिए भारत के अंदर प्रवेश करना सुगम था। अत: अब उन्होंने अपना समस्त ध्यान एवं शक्ति बर्मा को अपने कार्यों के लिए एक सुदृढ़ आधार बनाने में लगाया। वे बर्मा को आक्रमण का अड्डा बनाने के लिए कृत संकल्प थे जिससे वे भारत में अंग्रेजों की गर्दन पर झपट कर चढ़ सकें।

युद्ध-स्थल के लिए प्रस्तुत आई.एन.ए. की सेनाओं को देखकर बर्मा में भारतीयों के हृदयों में उत्साह की लहर दौड़ गयी। नेताजी के युद्ध फंड के लिए बर्मा में भारतीयों से आर्थिक सहयोग लेने के लिए रंगून में एक नेताजी फंड समिति बनायी गयी। देश की स्वतंत्रता के लिए सब कुछ बलिदान करने की नेताजी की अपील का लोगों ने अत्यधिक स्वागत किया। भारतीयों द्वारा सम्मेलनों में उन्हें समर्पित मालाओं को उन्होंने नीलाम करना आरंभ किया। श्रोताओं ने उनकी मालाओं को एक लाख, दो लाख और पांच लाख रुपये देकर भी क्रय किया। रंगून के एक नागरिक श्री हबीब ने अपनी संपूर्ण संपत्ति, भूमि, मकान, आभूषण जिनका मूल्य एक करोड़ रुपये से ऊपर था नेताजी को अर्पित कर दिए। यह समर्पण और त्याग का आश्चर्यजनक उदाहरण था। नेताजी इसे हंसी में हबीब मिक्सचर कहते थे और सभी भारतीयों को इस मिक्सचर को लेने के लिए कहते थे। अपनी समस्त लौकिक धन संपत्ति के समर्पण के साथ-साथ हबीब ने अपनी सेवाएं तथा अपना जीवन भी नेताजी को समर्पित कर दिया। रंगून की श्रीमती हेमराज बटाई ने भी अपनी समस्त लौकिक संपत्ति नेताजी को दे दी। उनके त्याग को महत्व प्रदान करने के लिए नेताजी ने उन्हें सेवक-ए-हिंद पदक द्वारा सम्मानित किया।

पूर्ण सक्रियता लाने के उद्देश्य से नेताजी ने सरकार और लीग संस्था का विस्तार किया। उन्होंने आपूर्ति विभाग, मानव शक्ति एवं माल विभाग में मंत्रियों की नियुक्ति करके सरकार के आधार को दृढ़ बनाया। सरकार नीति निर्धारित करती थी परंतु दैनिक कार्यों में उसका कार्यान्वयन लीग संस्था द्वारा समस्त क्षेत्र में फैली शाखाओं से माध्यम से किया जाता था। इस दृष्टि से नेताजी ने लीग के मुख्यालयों की संख्या जो सिंगापुर में 12 थी बढ़ाकर 24 कर दी।

रंगून में भारतीय स्वतंत्रता लीग के मुख्यालय में 24 विभाग थे— वित्त, लेखा परीक्षण, नेताजी फंड समिति, आपूर्ति, आपूर्ति बोर्ड, क्रय बोर्ड, माल विभाग, भर्ती एवं प्रशिक्षण, महिला विभाग (झांसी की रानी रेजिमेंट सहित), प्रचार एवं प्रसार, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण, राष्ट्रीय योजना, गुप्तचर विभाग, सूचना, उत्पादन, प्रावैधिक, संचार, कृषि एवं उद्योग, पुनर्निर्माण, आवास एवं परिवहन, विदेश, श्रम और शाखायें।

नेताजी के अपने बर्मा मुख्यालय पर चले जाने के पश्चात् सैनिक कार्यों के लिए भूमि तैयार हो गयी। आई.एन.ए. मलाया से थाईलैंड और बर्मा होती हुई लंबा रास्ता तय करके भारत की सीमा तक पहुंच गयी।

तभी भारत की स्वतंत्रता की दूसरी लड़ाई में आई.एन.ए. द्वारा प्रथम गोली दागे जाने का रोमांचकारी समाचार मिला। आई.एन.ए. ने 4 फरवरी 1944 को अराकान युद्ध के मोर्चे पर लड़ाई आरंभ की और विजय प्राप्त की।

आई.एन.ए. के इतिहास में 18 मार्च 1944 का दिन स्वर्णिम दिन के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगा क्योंकि इसी दिन आई.एन.ए. ने सीमा पार करके भारत की पावन भूमि पर अपने कदम रखे थे। 21 मार्च को एक प्रेस सम्मेलन में नेताजी ने एक नाटकीय घोषणा करके संपूर्ण संसार को इस ऐतिहासिक घटना की सूचना दी। प्रत्येक मास की 21वीं तारीख पूर्वी एशिया में भारतीयों के लिए एक पावन दिन था क्योंकि अक्तूबर 1943 में इसी दिन नेताजी ने पूर्वी एशिया में आजाद हिंद की अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषणा की थी।

स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू हो चुकी थी और अब आई.एन.ए. बर्मा-भारत सीमा पर कोहिमा के समीप और इंफाल के मैदानों में आठ क्षेत्रों में युद्ध कर रही थी।

कर्नल एस.ए. मलिक के नेतृत्व में आई.एन.ए. की एक टुकड़ी भारतीय प्रदेश में पर्याप्त अंदर चली गयी और उसने 14 अप्रैल 1944 को मणिपुर राज्य में मोरांग स्थान पर भारत का राष्ट्रीय तिरंगा लहरा दिया। इस प्रकार प्रतीक रूप में आई.एन.ए. ने भारत भूमि के एक भाग को अंग्रेजी शासन मे मुक्त करा दिया। भारत भूमि के जिस स्थान पर आई.एन.ए. ने प्रथम बार तिरंगा लहराया था वहीं आज़ाद हिंद फौज

के शहीद होने वाले सैनिकों की स्मृति में एक स्मारक बनाकर अब उसे पावन स्थल का रूप दिया जा चुका है। नेताजी की कांसे की मूर्ति वहां लगायी जानी है और नेताजी संग्रहालय भी शीघ्र बनाया जा रहा है। मोरांग भारत में आने वाली पीढ़ियों के लिए एक तीर्थ स्थल होगा। विशेष करके उन व्यक्तियों के लिए जो भारत की स्वतंत्रता के द्वितीय संग्राम के सैनिकों को, जिन्होंने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था, श्रद्धा अर्पित करने चाहते हैं।

16. मुक्त क्षेत्रों के मनोनीत गवर्नर

जब भारत-बर्मा सीमा पर अग्रिम युद्ध क्षेत्र में आई.एन.ए. संघर्षरत थी तब पीछे अस्थायी सरकार को साधन संपन्न करके सुदृढ़ किया जा रहा था जिससे कि वह भारत के स्वतंत्र हुए क्षेत्रों में प्रशासन एवं विस्थापितों को बसाने का कार्य जापानी सेना की सहायता से संपन्न कर सके। प्रारंभ से ही नेताजी ने जापानियों को यह स्पष्ट कर दिया था कि आई.एन.ए. और जापानी सेना जैसे ही भारत भूमि पर पहुंचेगी मुक्त हुए क्षेत्र में आज़ाद हिंद सरकार का पूर्ण शासन होगा। अस्थायी सरकार कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले जापानी सैनिकों को भारत में अंग्रेजी-अमेरिकी सेना के विरुद्ध लड़ने में आवश्यक सुविधा उपलब्ध करेगी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नेताजी ने जापानियों को यह स्पष्ट कर दिया था कि आई.एन.ए. के भारत में प्रवेश करने के पश्चात् अस्थायी सरकार ही उच्चतम अधिकारी होगी और मुक्त क्षेत्र में उसी की आज्ञा से समस्त कार्य होंगे। इसी नीति के अनुरूप नेताजी ने आजाद हिंद सरकार के नोट छपवाने का प्रबंध किया और डाक टिकट भी तैयार करवाये। मेजर जनरल ए.सी. चटर्जी मुक्त क्षेत्र के प्रथम गवर्नर मनोनीत किए गए। जापानी नागरिक एवं बैंक तथा कंपनियों सहित उनकी संस्थायें जो मुक्त क्षेत्र में होंगी गवर्नर के अधिकार में होंगी और वे आज़ाद हिंद सरकार के नोटों का ही प्रयोग करेंगी। आज़ाद हिंद का राष्ट्रीय बैंक ही अस्थायी सरकार का अधिकृत बैंक होगा। जापानी बैंक तथा व्यापारिक संस्थान राष्ट्रीय बैंक के निर्देशन तथा नियंत्रण में कार्य करेंगे।

युद्ध नीति पूर्णतया जापानियों के अधिकार में थी क्योंकि वे इस युद्ध में वरिष्ठ भागीदार थे। उन्हीं के टैंक, हवाई जहाज, तोपखाना, राइफल एवं बारुद युद्ध में प्रयोग हो रहे थे। जापानी इस बात से खिन्न थे कि युद्ध-स्थल पर अपना उच्च स्थान होते हुए भी आई.एन.ए. के साथ भारत में प्रवेश करने पर वे अस्थायी सरकार के अधीन होंगे। नेताजी अपने इस महत्वपूर्ण सिद्धांत पर दृढ़ थे। अत: जापानियों को उनके इस निर्णय पर झुकना पड़ा। इसी सिद्धांत के अनुसार नेताजी ने जापानियों का यह प्रस्ताव कि भारत भूमि पर भारत जापान सहयोग समिति का अध्यक्ष जापानी हो एकदम अस्वीकार कर दिया। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि या तो उस समिति का अध्यक्ष भारतीय होगा अथवा कोई अध्यक्ष ही नहीं होगा।

इस प्रकार जापानी सदैव यह ध्यान रखते थे कि भारत की प्रभुसत्ता, निष्ठा एवं स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले विषयों पर नेताजी के साथ उनकी स्थिति कहां है। नेताजी ने जापानियों से यह स्पष्ट कह दिया था कि अंग्रेजों की जगह जापानियों को अपना स्वामी बनाने की अपेक्षा वे भारत को अंग्रेजों की परतंत्रता में दो सौ वर्ष और रखना पसंद करेंगे।

हिकारी किकान (संपर्क कार्यालय) के प्रमुख जनरल इसोडा के साथ काफी खींचातानी के बाद नेताजी ने अंत में आई.एन.ए. के कार्यों की अर्थ व्यवस्था के लिए आज़ाद हिंद का राष्ट्रीय बैंक स्थापित करने की अनुमति जापानियों से प्राप्त कर ली। उन्होंने 5 अप्रैल 1944 को रंगून में बैंक खोला और उसी दिन रानी झांसी की रेजिमेंट के साथ युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान किया। लड़कियों में अपार उत्साह था और उन्हें इस बात का गर्व था कि वे आई.एन.ए. के पुरुषों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर लड़ने के लिए युद्ध-स्थल की ओर जा रही थीं।

पुनर्निर्माण की दृष्टि से आई.एन.ए. द्वारा मुक्त कराये गए क्षेत्रों में लोगों के पुनर्वास, नागरिक प्रशासन की स्थापना के लिए मनोनीत गवर्नर पूर्णरूप से तैयार थे। उनके साथ आजाद हिंद दल के नागरिक प्रशासन में पूर्णरूपेण प्रशिक्षित सैनिक थे। इस दल में कृषक, बढ़ई, लुहार, पोस्टमैन, वायरलैस आपरेटर्स, ट्रक चालक, सड़क निर्माणकर्त्ता तथा अन्य कारीगर थे जो ध्वस्त ग्रामों एवं नगरों में पुनर्निर्माण का कार्य करने को तैयार थे एवं सामान्य नागरिक जीवन पुन:स्थापित करने के लिए प्रस्तुत थे।

नेताजी ने सैनिक कार्रवाई के प्रत्येक पहलू पर और विदेशी शासन से मुक्त होने पर शीघ्रता से नागरिक प्रशासन पुन:स्थापित करने पर विचार कर रखा था। उन्होंने छोटे से छोटे कार्य के लिए भी प्रशिक्षित पुरुषों की नियुक्ति की थी जिससे कि परिवर्तन के समय अविलंब सामान्य जीवन स्थापित किया जा सके एवं पुनर्निर्माण का कार्य हो सके। आई.एन.ए. की जीत के परिणामस्वरुप उसके आगे बढ़ने पर शत्रु यदि पूर्ण विध्वंस की नीति अपना कर प्रत्यावर्तन करते समय समस्त वस्तुओं को नष्ट भी कर दे तो आजाद हिंद दल तुरंत कार्यरत होने के लिए तैयार था। नागरिक अभियंताओं द्वारा अस्थायी कुटिया बनाने की एवं यांत्रिक अभियंताओं द्वारा खाद्यान्न उगाने के लिए पानी के पंप लगाने की तथा विद्युत अभियंताओं द्वारा सड़कों पर प्रकाश करने की योजना तैयार थी। पीने का पानी समीप के कुओं एवं तालाबों से लाया जायेगा, आसपास के ग्राम अस्थायी सड़कों द्वारा मिलाए जायेंगे, मुक्त क्षेत्र में पोस्टमैन डाक एवं मनिआर्डर वितरित करेंगे, आजाद हिंद बैंक मुक्त क्षेत्र के व्यक्तियों को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त धन देगा।

17. क्रांतिकारी सेना

द्वितीय विश्व युद्ध के तूफान के दौरान जन्म लेनेवाली आई.एन.ए. एक क्रांतिकारी सेना थी जो इस विश्व युद्ध में कार्यरत अन्य सेनाओं से भिन्न और अनोखी थी। यह एक ऐसी सेना थी जिसका निर्माण अपनी मातृभूमि से सैकड़ों मील दूर एक विदेशी भूमि पर हुआ था, जो हवाई जहाज, टैंक, तोपखाना, राइफल एवं बारूद, यहां तक कि सैनिकों को युद्ध-स्थल तक ले जाने हेतु लारियों के लिए भी विदेशी शक्तियों पर निर्भर थी। यह सेना जापान से बर्मा तक संपूर्ण पूर्वी एशिया में फैले हुए भारतीयों की देशभक्ति की भावनाओं पर आश्रित थी। इन्हीं से उसे सैनिक, धन, वस्त्र, खाद्य सामग्री एवं अन्य वस्तुयें प्राप्त होती थीं। इस सेना की सबसे बड़ी शक्ति उसके सैनिकों की आत्मोत्सर्ग की भावना थी। ये सैनिक अपने मुख से 'चलो दिल्ली' का नारा लगाते हुए उत्साहपूर्वक अपना जीवन बलिदान करने को आये थे।

नेताजी इस विचित्र सेना के विलक्षण उच्चतम सेनापति थे जो यूरोप अथवा एशिया के अन्य सेनापतियों से भिन्न थे। संभवत: संसार के सैनिक इतिहास में पहली बार सैनिकों को नेताजी ने ऐसी भाषा में संबोधित किया था जैसी पहले कभी नहीं सुनी गयी थी। उन्होंने युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाले सैनिकों से कहा था—"मैं इस अंतिम समय पर भी जब कि तुम युद्ध-स्थल पर जाने के लिए प्रस्तुत हो तुम्हें स्वतंत्र रूप से यह निर्णय करने की छूट देता हूं कि तुम वास्तव में अपने देश के लिए अपना जीवन देने को तैयार हो। यदि तुम्हारे मन में इस उद्देश्य की पवित्रता के संबंध में तनिक भी शंका हो तो तुम इसी समय सेना से पृथक होकर पीछे रह सकते हो। तुम बिना संकोच के ऐसा कर सकते हो। मैं तुम्हें पीछे की पंक्ति में कुछ अन्य कार्य दूंगा। मुझे संख्या की चिंता नहीं है। एक छोटी सेना, जिसे अपने उद्देश्य में, जिनके लिए वह युद्ध करने जा रही है, विश्वास है तो वह किसी भी उस बड़ी सेना से अच्छी है जिसे न तो अपने उद्देश्य का ज्ञान है और जो अपने लक्ष्य के प्रति उदासीन है एवं उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखती है। मैं तुमको स्पष्ट बता देना चाहता हूं कि मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है सिवा भूख, प्यास और मृत्यु। तुम अपना पथ निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र हो। तुमको अभी पृथक होने में लज्जित

होने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमको दोष नहीं दूगां। मैं तुम्हारी ईमानदारी की प्रशंसा करूंगा और तुम्हें कोई अन्य उपयोगी कार्य सौंप दूंगा।''

नेताजी इन शब्दों को आई.एन.ए. के सैनिकों के समक्ष जब वे युद्ध-स्थल को जाते थे बार-बार दोहराते थे। एक भी सैनिक ऐसा नहीं निकला जो पृथक होकर पीछे रहना चाहता हो।

वर्मा में उपस्थित आई.एन.ए. की दो डिवीजनों के बीस हजार सैनिक इसी उत्कृष्ट भावना से प्रेरित थे। पहली डिवीजन के कमांडेंट मेजर जनरल जमा कियानी थे और दूसरी डिवीजन के कमांडर कर्नल अजीज अहमद के स्थान पर कर्नल शाहनवाज थे क्योंकि कर्नल अजीज अहमद को जब वे युद्ध-स्थल पर जाने को तैयार हो रहे थे तभी रंगून पर बमबारी में चोट लग चुकी थी।

दिल्ली की ओर प्रस्थान के समय मुक्ति सेना के लिए नेताजी का प्रेरक उच्च उद्घोष 'चलो दिल्ली' समय की दीवारों से टकराकर बार-बार प्रतिध्वनित होता रहेगा। सीमा पर खड़े होकर अपनी मातृभूमि की ओर संकेत करके उन्होंने कहा था—''उस नदी के पार, उस जंगल के पार, उन पहाड़ियों के पार हमारी मातृभूमि स्थित है—वह भमि जिसकी मिट्टी से हमने जन्म लिया है—वह भूमि जहां अब हम वापस जाएंगे। सुनो—भारत तुम्हें पुकार रहा है। तुम्हारे भ्रातृगण तुम्हें पुकार रहे हैं, खून-खून को पुकार रहा है। उठो, अब समय नष्ट न करो, अपने अस्त्र-शस्त्र उठाओ, हम शत्रु सेना के मध्य से अपना पथ प्रशस्त करेंगे अथवा यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा है तो शहीद की मृत्यु प्राप्त करेंगे और अंतिम बार निद्रामग्न होते समय उस पथ को चूमेंगे जिस पर चलकर हमारी सेना दिल्ली जाएगी। दिल्ली की सड़क स्वतंत्रता की सड़क है, 'चलो दिल्ली'।''

८ अप्रैल को कोहिमा का किला और दिमापुर-कोहिमा रोड पर एक छावनी पर कब्जा किया और अगले दिन इंफाल पर घेरा डाला और इस पर 13 अप्रैल को चारों ओर से आक्रमण किया। तत्पश्चात् पुनः १८ अप्रैल को इंफाल पर चारों ओर से आक्रमण किया। आई.एन.ए. ने इंफाल में शत्रुओं के व्यूह को उत्तर में ध्वस्त किया। 22 अप्रैल को घमासान युद्ध हुआ— युद्ध मई मास तक होता रहा। 20 मई को इंफाल के घेरे को कड़ा किया गया। शत्रु सेना इंफाल को बचाने के लिए कठिन युद्ध कर रही थी क्योंकि माउंटबेटन मुख्यावास से उन्हें आज्ञा मिली थी कि इंफाल को प्रत्येक दशा में बचाना था। आई.एन.ए. समय के विपरीत युद्ध कर रही थी क्योंकि बर्मा में मानसून तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था।

मानसून वर्षा प्रथम जून को आरंभ हुई। मूसलाधार पानी बरसा। युद्ध-स्थल पर वर्षा की बाढ़ आई.एन.ए. के उस पथ पर आ गयी जिससे सामग्री आती थी और

जिसके द्वारा संचार व्यवस्था स्थापित थी। 27 जून को इंफाल से घेरा उठा लिया गया। शत्रु सेना जो संख्या में अधिक थी और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थी, जिसके पास सामग्री का बहुत बड़ा भंडार था, ने अब आक्रमण किया। आई.एन.ए. अब रक्षात्मक युद्ध कर रही थी। पांच माह के इस भयंकर युद्ध में आई.एन.ए. ने उच्च कोटि की कर्तव्य निष्ठा, स्मरणीय साहस द्वारा उत्तम युद्ध-कौशल का पर्याप्त प्रमाण दिया था।

4 अगस्त, 1944 को जब आई.एन.ए. घमासान युद्ध कर रही थी नेताजी ने रंगून रेडियो से अविस्मरणीय प्रसारण किया और महात्मा गांधी से भावनात्मक अपील की। युद्ध स्थिति की विस्तृत व्याख्या करने के पश्चात् उन्होंने गांधीजी से कहा—"भारत की स्वतंत्रता के लिए अंतिम युद्ध आरंभ हो चुका है। आजाद हिंद फ़ौज भारत भूमि पर वीरता से युद्ध कर रही है और अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी धीरे-धीरे दृढ़ता से आगे बढ़ रही है। यह सशस्त्र युद्ध उस समय तक चलता रहेगा जब तक हम अंतिम अंग्रेज को भारत से बाहर न निकाल देंगे और हमारा तिरंगा नयी दिल्ली में वाइसराय भवन पर न फहराने लगेगा।"

"राष्ट्रपिता ! हम भारत के इस पवित्र मुक्ति युद्ध में आपका आशीर्वाद एवं शुभकामना चाहते हैं, जयहिंद।"

14 अगस्त,1944 को एक दैनिक विशेष आदेश में नेताजी ने कहा—"भारतीय राष्ट्रीय सेना के मेरे वीर साथी देशभक्तो ! हमने इंफाल पर आक्रमण करने की पूर्ण तैयारी कर ली थी परंतु तभी मूसलाधार वर्षा आरंभ हो गयी। इस कारण इंफाल पर आक्रमण करना असंभव हो गया। जैसे ही हमारी तैयारी पुनः पूर्ण हो जाएगी हम एक बार फिर तीव्र आक्रमण करेंगे। हम अपने वीरों के उत्तम युद्ध कौशल, अदम्य उत्साह एवं अडिग कर्तव्य परायणता के कारण अवश्य विजयी होंगे।"

युद्ध भूमि से सुदूर निवास करने वाले नागरिक सैनिक अधिकारियों एवं जवानों की शौर्य गाथा सुनकर रोमांचित हो जाते थे। रंगून में एक प्रेरणादायक परेड के अवसर पर नेताजी ने अवशेष अधिकारियों एवं सैनिकों को युद्ध भूमि पर शौर्य के लिए सम्मान प्रदान किया। उन्होंने उन वीरों को जिन्होंने दिल्ली जाने वाले पथ पर अपने जीवन की आहुति दे दी थी मरणोपरांत अनेक पुरस्कार घोषित किए।

18. दुखांत पराजय

इस अप्रिय तथ्य को छिपाया नहीं जा सकता कि आई.एन.ए. की कोहिमा एवं इंफाल में पराजय एक दुखद घटना थी। यदि आई.एन.ए. इंफाल और कोहिमा में विजयी हो जाती तो उसे बंगाल और आसाम में आगे बढ़ने से कोई नहीं रोक सकता था। उस समय भारत का प्रत्येक व्यक्ति अंग्रेज शासकों के विरुद्ध खड़ा हो जाता और आई.एन.ए. की विजय-यात्रा के लिए दिल्ली पथ का द्वार खुल जाता।

परंतु ऐसा नहीं होना था। मूसलाधार वर्षा, कीचड़, दलदल, सामग्री पंक्ति में अवरोध, खाद्य वस्तु और औषधियों के अभाव से आई.एन.ए त्रस्त हो गयी और युद्ध-मुख के पीछे हटना पड़ा। हैजा, दस्त एवं मलेरिया ने अनेक सैनिकों का जीवन ले लिया परंतु अवशेष सैनिक आधार स्थल पर स्थित औषधालयों में लड़खड़ाते हुए पहुंच गए। वे शीघ्र स्वस्थ होने के लिए व्याकुल थे। वे अपनी राइफल लेकर पुन: युद्ध भूमि में लड़कर अपना जीवन उत्सर्ग करने के इच्छुक थे। उन्हें नेताजी के केवल ये ही शब्द स्मरण हो आते थे कि "जब तुम खड़े हो तो चट्टान के समान दृढ़ता से खड़े हो, जब आगे बढ़ो तो स्टीम रोलर के समान आगे बढ़ो।"

बर्मा और भारत सीमा पर सैनिक कार्यवाई की संपूर्ण कहानी, इंफाल और कोहिमा में आई.एन.ए. एवं सैनिकों के व्यक्तिगत वीरतापूर्ण पराक्रम का विशद विवेचन मेजर जनरल शाहनवाज ने अपनी पुस्तक "आई.एन.ए. और उसके नेताजी" में किया है। आई.एन.ए. की एक बिछड़ी हुई टुकड़ी जिसने ग्यारह दिन जंगल में घास खा-खाकर युद्ध जारी रखा एक कहानी के रूप में स्मरण की जाती है और यह अनेक कहानियों में से एक है जिसे भावी पीढ़ियां पढ़कर अपने अद्वितीय वीरों के गौरव एवं गरिमायुक्त प्रशंसनीय कार्यों को स्मरण करेंगी।

इस पराजय से नेताजी निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने बर्मा के जनसाधारण को आई.एन.ए. की विफलता को सत्य एवं दुखद घटना बतायी और उनसे अधिक धन, अधिक सामग्री एवं अधिक सैनिकों की भर्ती कराकर इंफाल पर पुन: आक्रमण करने के लिए अपने प्रयासों को दुगुना करने का आग्रह किया। नेताजी ने गर्जना की—"हम इंफाल पर पुन: आक्रमण करेंगे, एक बार नहीं, दस बार। मैं चाहता हूं कि तुम स्वतंत्रता के लिए दीवाने हो जाओ। करो सब न्योछावर, बनो सब फकीर।" नेताजी

के उत्साह से भारतीय अभिभूत हो गए और अब वे और अधिक शक्ति के साथ युद्ध कार्यों में सहयोग देने के लिए सन्नद्ध हो गए। जनता के मन में सैनिक विफलता से पश्चाताप एवं निराशा उत्पन्न नहीं हुई। उन्होंने बड़े पैमाने पर रंगून में नेताजी सप्ताह मनाने का आयोजन किया। अपने मंत्रियों से घिरे हुए नेताजी मंच पर खड़े हुए। पुरुष, स्त्री एवं बच्चों ने थालों में स्वर्ण, चांदी, आभूषण एवं अन्य छोटी वस्तुएं भरकर नेताजी को एक अनंत जलूस के रूप में जाकर भेंट की। कुछ ऐसे युवकों ने जिनके पास भेंट करने को कोई सामग्री नहीं थी खून से लिखकर इस आशय का शपथ-पत्र भेंट किया कि वे अपनी मातृभूमि की बलिवेदी पर अपना जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत थे। उनका यह कार्य पूर्वी एशिया के समस्त युवकों की ओर से नेताजी के आह्वान के प्रत्युत्तर का प्रतीक था। नेताजी ने कहा था—"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।" उन्होंने पूर्वी एशिया निवासी तीस लाख भारतीयों से कहा था कि विश्व के इतिहास में किसी देश ने भी बिना खून बहाये स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की। यह उसका मूल्य है जो हमें नि:संकोच चुकाना है।"

परंतु देशभक्ति की यह उच्च भावना व्यर्थ गयी। आई.एन.ए. के प्रत्यावर्तन के पश्चात् ही शक्तिशाली शत्रु सेना ने प्रत्याक्रमण आरंभ कर दिया। शत्रु सेना संख्या में बहुत अधिक थी। उनके पास हवाई जहाज, टैंक, तोपखाना, राइफल एवं गोला-बारुद बहुत अधिक था। प्रत्याक्रमण का लक्ष्य मैकटीला था परंतु वास्तव में उनका अंतिम लक्ष्य रंगून था।

विजयी शत्रु सेना जब मांडले को पार कर रही थी तो उन्हें आइ.एन.ए. के सैनिकों के प्रज्वलित एवं अदम्य उत्साह का अनुभव हुआ। उन्होंने मांडले में भारतीयों का 'जयहिंद' द्वारा अभिवादन करना वर्जित कर दिया था क्योंकि यह अभिवादन उस सबका प्रतीक था जिसके लिए आई.एन.ए. एवं नेताजी युद्ध कर रहे थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन जब शिखर पर था तब नौ वर्ष से ऊपर की आयु के लड़के एवं लड़कियों को नौ सप्ताह का गहन प्रशिक्षण दिया गया था। निषेध आज्ञा के विरोध में एवं अपने जीवन और शरीर की कोई चिंता न करके युवक और युवतियां जब अंग्रेजी सेना उनके मध्य से जाती थी उनके कान पर 'जयहिंद' कहकर चिल्लाते थे और जब सैनिक इन राजद्रोहियों को पकड़ने का प्रयास करते थे तो वे उन्हें धोखा देकर तुरंत भाग जाते थे। ये बाल सेना और बालिका सेना पूर्वी एशिया में सर्वत्र आई.एन.ए. एवं रानी झांसी रेजीमेंट की सहायता के लिए बनायी गयी थी।

अब कुछ ही दिनों में अंग्रेजी सेना रंगून पहुंचने वाली थी तो प्रश्न यह था कि अब नेताजी का अगला कदम क्या होगा? इस विषय पर अस्थायी सरकार को एक महत्वपूर्ण निर्णय लेना था। रंगून में उपस्थित मंत्रिमंडल के सदस्य इस बात पर एक

मत थे कि नेताजी को किसी दशा में भी शत्रुओं के हाथ में नहीं जाना है। अत: उन्हें आगे बढ़ते हुए शत्रु से दूर थाईलैंड, हिंदचीन, जावा अथवा फिलीपीन यहां तक कि जापान कहीं भी पूर्व की ओर चला जाना चाहिए। परंतु नेताजी को इसके लिए तैयार करना कठिन था। वे इस बात पर दृढ़ थे कि वे रंगून में ठहरकर अपने सैनिक साथियों के साथ उनके भाग्य में भागीदार होंगे।

अंत में मंत्रिमंडल ने उनसे यह कहकर कि वे किसी अन्य स्थान से लड़ाई जारी रखने के लिए स्वतंत्र होंगे, रंगून छोड़ने पर सहमत कर लिया। नेताजी ने रंगून छोड़ने की सहमति अनिच्छा से दी परंतु उनको सबसे अधिक चिंता उन सैकड़ों लड़कियों के संबंध में थी जो रानी झांसी रेजीमेंट में सैनिक थीं। वे इस बात पर दृढ़ थे कि जब तक लड़कियों को रेल अथवा सड़क परिवहन द्वारा थाईलैंड नहीं भेज दिया जायेगा तब तक वे रंगून नहीं छोड़ेंगे।

रंगून छोड़ने से पूर्व उस दिन के विशेष आदेश प्रेषित करते समय उन्होंने आज़ाद हिंद फौज के वीर अधिकारियों एवं सैनिकों से कहा—"साथियो! इस महत्वपूर्ण समय पर मुझे तुम्हें एक ही आज्ञा देनी है और वह यह है कि यदि तुम्हें कुछ समय के लिए दबना भी पड़े तो तिरंगे को ऊंचा रखकर उसे स्वीकार करना, वीरों के समान पराजय स्वीकार करना, पराजय उच्चकोटि के अनुशासन एवं सम्मान के साथ स्वीकार करना।"

भारतीय और बर्मा निवासी मित्रों के लिए संदेश में उन्होंने भारतीयों के आत्म बलिदान की भावना की प्रशंसा की और बर्मा निवासियों से भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में जो सहायता दी उसके लिए उन्होंने बर्मा की सरकार और नागरिकों के प्रति आभार प्रकट किया।

19. प्रत्यावर्तन का उत्पीड़न और उसके बाद

23 अप्रैल 1945 को रंगून में सूचना मिली कि अंग्रेज सेना मध्य बर्मा में पिनमाना तक पहुंच चुकी है और अब कुछ ही घंटों में वो बर्मा की राजधानी पहुंच जाएगी। भारतीय अधिकारियों को सबसे अधिक चिंता इस बात की थी कि नेताजी अभी रंगून में ही थे। अब उनका रंगून छोड़ने में विलंब करना विनाशकारी सिद्ध होता। रंगून में जापानी अधिकारियों से इस संबंध में निरंतर विचार-विमर्श किया गया। परंतु वे स्वयं रंगून खाली करने की तैयारी में लगे हुए थे और महत्त्वपूर्ण पत्रादि को नष्ट कर रहे थे, वे अपने गोला-बारूद के भंडार में भी आग लगाने की व्यवस्था कर रहे थे जिससे कि वह आनेवाली शत्रु सेना के हाथ न पड़े। इस समय जापानी अव्यवस्थित एवं उलझन में थे। वे हताश नहीं हुए थे परंतु आतंकित अवश्य थे। इसके विपरीत नेताजी स्थिर एवं शांत थे और इस बात पर दृढ़ थे कि वहां से जाने के लिए उन्हें कम-से-कम इतने साधन प्राप्त हो जायें जिससे कि रानी झांसी रेजिमेंट एवं अस्थायी सरकार के एक सौ से अधिक अधिकारी एवं कर्मचारी तथा आई.एन.ए. के सैनिक उनके साथ जा सकें।

24 अप्रैल की चांदनी रात में चार कार और बारह लारियों का काफिला नेताजी के साथ उनकी पार्टी एवं रानी झांसी रेजिमेंट की लड़कियों को लेकर उनके घर से बैंकाक की अविस्मरणीय 21 दिन की यात्रा पर निकला। नेताजी दो घंटे में भी रंगून से बैंकाक जाना स्वीकर कर लेते। परंतु उन्होंने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जापानियों से कहा कि वे अपनी संपूर्ण पार्टी के साथ ही जायेंगे चाहे उन्हें बैंकाक तक पैदल चलना पड़े और उन्हें तीन रात पैदल भी चलना पड़ा। जब उन्होंने देख लिया कि उनकी पार्टी का प्रत्येक व्यक्ति लारी में बैठ गया है तब वे स्वयं मर्तबान के लिए शेष यात्रा पूरी करने हेतु लारी में बैठे।

कार और लारियां रंगून छोड़ने के दो अथवा तीन दिन बाद तक प्रयोग में आयीं। उनको बाब और सीटांग नदियों के तटों पर छोड़ दिया गया क्योंकि वहां पर इतनी नौकाएं नहीं थी कि उन सबको नदी पार ले जाया जा सके। जब वे मर्तबान से सीटांग की सड़क पर पहुंचे तो नेताजी एवं पार्टी के अन्य सदस्य भूखे-प्यासे थे और उनके पैरों में छाले पड़ गये थे। इसी दशा में वे चलने के लिए बाध्य थे। रात्रि

में चलते समय कभी-कभी व्यवधान पड़ जाता था और प्रत्येक बार जब शत्रुओं के हवाई जहाज उनके ऊपर से उड़ते तो उन्हें सड़क के किनारे खड़े पेड़-पौधों के बीच छिपने के लिए बिखर जाना पड़ता था। परंतु प्रत्यावर्तन व्यवस्थित था। मेजर जनरल जमान कियानी इसके नेता नियुक्त किए गए थे। संपूर्ण-पार्टी स्वयं आई.एन.ए. के उच्चतम कमांडर नेताजी भी-इस अनिवार्य प्रयाण में जनरल जमान कियानी की आज्ञाओं का पालन करते थे। नेताजी ने इस प्रकार का व्यवहार कर के सैनिक अनुशासन का उच्च आदर्श स्थापित किया। वे इस प्रयाण करते हुए दस्ते के सबसे आगे मेजर जनरल भौंसले जो चीफ आफ स्टाफ थे, के साथ चल रहे थे। मेजर जनरल चटर्जी, अस्थायी सरकार के मंत्री तत्पश्चात् रानी झांसी रेजिमेंट की लड़कियां और अंत में आई.एन.ए. के सैनिक उनके पीछे थे।

यह प्रत्यावर्तन तीन सप्ताह तक अत्यंत दुखपूर्ण [illegible] में चलता रहा जबकि सैनिकों को दिन में एक बार भोजन मिलता था। बमबारी, मशीनगन दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। उन्हें रात्रि में ही चलना पड़ता था दिन में वे शत्रु की दृष्टि से बचने के लिए जंगलों में छिप जाते थे।

सीटांग में शत्रु सेना की बमबारी का निष्कृष्टतम दिन वह था जब मेजर जनरल चटर्जी के वैयक्तिक सहायक लै. नजीर अहमद विनाशकारी वायु आक्रमण में बुरी तरह घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हुए।

मोलमेन पहुंचने के पश्चात् यात्रा कुछ सुगम हुई। और नेताजी एवं पार्टी बैंकाक में सभ्य समाज के बीच 14 मई को पहुंचे।

दूसरे दिन से ही नेताजी कार्यरत हो गए। प्रतिदिन वे बैंकाक में अपने निवास स्थान पर मंत्रियों की नियमानुकूल औपचारिक अथवा अनौपचारिक बैठक करते थे। इन बैठकों में मंत्रणा का मुख्य विषय यही होता था कि आगे क्या करें? पूर्वी एशिया एवं भारत में विश्व युद्ध की स्थिति पर रेडियो प्रसारणों के आधार पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया जाता था। जर्मनी की पराजय का समाचार उनके बैंकाक पहुंचने के एक सप्ताह पूर्व पहुंच चुका था। अब अकेला जापान अंग्रेज और अमेरिकनों से कब तक युद्ध कर सकेगा? यदि जापान की भी पराजय हुई तो आई.एन.ए. का क्या कार्य होगा? नेताजी उस स्थिति में अपनी लड़ाई कहां से जारी रखेंगे? क्या नेताजी जापान के माध्यम से रूस से जो युद्ध में तटस्थ था और जापान से मैत्री भाव रखता था संपर्क स्थापित करेंगे? क्या जापान रूस से संपर्क स्थापित करने के उनके विचार को अच्छा समझेगा? नेताजी ने रूस के कट्टर देश जर्मनी का युद्ध में साथ दिया था इस कारण रूसी उनके प्रस्ताव का कहां तक आदर करेंगे? यदि जापानी नेताजी के रूस से संपर्क करने के विषय में सहयोग दें तो रूस के माध्यम

से शांति स्थापित करने एवं संधि में अनुकूल शर्तों पर सहमति लेने के उनके प्रस्तावों पर कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा? इस प्रकार नेताजी का रूस से संपर्क स्थापित करने का विचार अनेक कठिनाइयों से पूर्ण था। परंतु नेताजी तो जन्म से आशावादी थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे जापान से उनका रूस से संपर्क कराने का आग्रह करेंगे। वे रूस से भर्त्सना सहन करने के लिए भी तैयार थे। रूस की सीमा में पहुंचकर वे प्रतिबंधित होने के लिए भी प्रस्तुत थे। इस प्रकार यह निश्चय किया गया कि नेताजी किसी प्रकार रूस पहुंचने का प्रयत्न करें।

जून 1945 के मध्य में भारत से समाचार मिला कि भारत द्वारा अंग्रेजों के युद्ध प्रयासों में सहयोग देने के फलस्वरूप वाइसराय लार्ड वैवेल अपनी कार्यकारिणी समिति में अधिक भारतीयों को सम्मिलित करने का प्रस्ताव कांग्रेस उच्च कमान के सम्मुख रख रहे है। नेताजी तुरंत हवाई जहाज से सिंगापुर गए और वहां से रेडियो द्वारा अंग्रेजी, हिंदुस्तानी, बंगाली भाषाओं में पूरे एक मास रात-रात भर प्रसारण करके गांधीजी और अन्य चोटी के नेताओं से लार्ड वैवेल के साथ समझौता न करने के निवेदन करते रहे। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता को अंग्रेजी साम्राज्य का घरेलू मामला न मानकर अंतर्राष्ट्रीय विषय बनाने का आग्रह किया। उन्होंने कांग्रेस उच्च कमान से ब्रिटेन में होने वाले निर्वाचन तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा। इस निर्वाचन में लेबर पार्टी की विजयी होने की आशा थी और चर्चिल की अपेक्षा इस पार्टी से उन्हें अधिक अच्छे समझौते की आशा थी। शिमला में वेवेल सम्मेलन विफल रहा तभी नेताजी ने संतोष की सांस ली।

20. क्रूर नियति

सन 1945 की मध्य जुलाई में नेताजी ने सिंगापुर से मलाया में सीरमबान के लिए प्रस्थान किया। वहां उन्हें आई.एन.ए. से संबंधित कुछ आवश्यक विषयों पर विचार करना था। सीरमबान के अतिथि गृह में जहां नेताजी ठहरे थे कोई रेडियो सैट नहीं था। उन्होंने 10 अगस्त 1945 को टेलीफोन पर सुना कि रूस ने जापान के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अब जापानी नेताजी से क्या करने की आशा करेंगे?

क्या वे उनसे यह आशा करेंगे कि वे भी रूस के विरुद्ध युद्ध घोषित करें क्योंकि वे उनके सहयोगी थे? जापानी उनसे क्या करने की आशा करेंगे, यह उनकी कठिन परीक्षा का विषय नहीं था। उनकी परीक्षा तो इस बात में थी कि वे इस बात पर विचार करें कि भारत के हित में क्या था? उन्होंने निर्णय किया कि भारत का हित रूस के विरुद्ध युद्ध करने में नहीं था क्योंकि ऐसा करने से भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई जारी रखने के लिए एकमात्र अवशेष साथी भी उनके हाथ से निकल जायेगा। इसी समय रूस जापान-अधिकृत मंचूरिया में आगे बढ़ता आ रहा था।

अगस्त 12 को प्रात: दो बजे डा. लक्ष्मिया और गनपति सिंगापुर सीधे मोटर गाड़ी द्वारा बिना कहीं विश्राम किए सीरमबान के अतिथि गृह में पहुंचे जहां उन्होंने नेताजी को जापान द्वारा पराजय स्वीकार करने का स्तंभित करने वाला समाचार सुनाया। भारत की स्वतंत्रता की दो वर्ष की लड़ाई में आई.एन.ए. के लिए यह घोर अंधकार का समय था। इस भयंकर समाचार ने नेताजी के सब स्वप्न एकदम ध्वस्त कर दिए। अब आई.एन.ए. को सर्वत्र अधंकार ही अधंकार दिखाई देता था। जापान द्वारा पराजय स्वीकार करने के बाद आई.एन.ए. अमेरीका और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध कैसे करेगी ? आई.एन.ए सामग्री के अभाव में युद्ध समाप्त कर सकती थी परंतु पराजय स्वीकार नहीं करेगी। आई.एन.ए. को बंदी बनाया जा सकता था परंतु अधिकारी एवं सैनिक पराजय स्वीकार नहीं करेंगे अथवा श्वेत झंडा नहीं दिखायेंगे। आई.एन.ए. देशभक्ति की ज्योति को तीव्रता से जलाये रखेगी। जापान द्वारा पराजय स्वीकार करने के समाचार और आई.एन.ए. पर उसके विनाशकारी प्रभाव की नेताजी पर उस समय यही प्रतिक्रिया हुई। नेताजी प्रात: 5 बजे तक अपने भावी कार्यक्रम के विषय में शांतिपूर्वक विचार

करते हुए जागते रहे। उन्होंने ब्रिटिश-अधिकृत बर्मा के अतिरिक्त पूर्वी एशिया में स्थित आई.एन.ए. एवं स्वतंत्रता लीग की समस्त इकाइयों को आवश्यक निर्देश निर्गत किए।

भावी स्वतंत्र भारत के भव्य सपनों को संजोने वाला वह स्वप्नदृष्टा जापान की पराजय के पश्चात् वास्तविकता की लौकिक भूमि पर आकर तुरंत दुखद परिस्थिति से निबटने के लिए भावी कार्यक्रम बनाने में लग गया। अब पूर्वी एशिया के तीस लाख देशभक्त भारतीय क्या करेंगे? संसार की समस्त जातियों के इतिहास में जो विदेशी शक्तियों के साथ अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत थी, भारतीयों के त्याग एवं कष्ट के समान कम उदाहरण थे। धनी व्यक्तियों ने अपना धन एवं अति निर्धन व्यक्तियों ने यहां तक कि श्रमिकों, फेरी वालों एवं मोचियों ने अपना सर्वस्व, अपना जीवन भी देश के लिए अर्पित कर दिया था। नेताजी के संकेत पर वे वास्तव में स्वतंत्रता के लिए दीवाने हो गए थे। उनका उत्साह पराकाष्ठा पर पहुंच गया था और वे किसी भी समय अपने स्वतंत्र भारत में प्रवेश की आशा करते थे।

परंतु क्रूर नियति ने उनके स्वप्नों पर नृशंस पर्दा डाल दिया। यकायक उनको अपने मानसिक उद्वेगों को शांत करना पड़ा परंतु उनका यह मानसिक कष्ट क्षणिक था। यद्यपि आई.एन.ए. अब युद्धरत नहीं थी परंतु अब भी उसका मस्तक ऊंचा था। उसकी विरोधी भावना अक्षुण्य थी। और उसका ज्येष्ठतम कमांडर विश्व युद्ध के समस्त कमांडरों में श्रेष्ठ था। वह अपने को पराजित नहीं समझता था क्योंकि वह क्रांतिकारी सेना का कमांडर था जो कभी पराजय स्वीकार नहीं करती। उनके लिए यह विपर्य क्षणिक था। नेताजी ने अपने सैनिकों से बार-बार कहा था "केवल वही सेना पराजित होती है जो अपने को पराजित हुआ समक्षती है। एक सच्ची क्रांतिकारी सेना संसार की किसी भी शक्ति का अथवा संयुक्त शक्तियों का सामना कर सकती है।" जब जापान की पराजय के साथ विश्व युद्ध समाप्त हुआ तब संपूर्ण आई.एन.ए. में उपर्युक्त भावना व्याप्त थी।

उच्च भावनाओं के तीस लाख व्यक्तियों और अपराजित आई.एन.ए. के साथ नेताजी चट्टान के समान दृढ़ खड़े थे। उन्होंने अपने जीवन के उद्देश्य की विफलता की कठोर वास्तविकता का अनुभव सैनिक विफलता में किया परंतु अपने सैनिक प्रयासों की आध्यात्मिक स्तर पर सफलता के लिए वे पूर्णतया आश्वस्त थे। उनके मन में तनिक भी संदेह नहीं था कि जब भारतवासियों को आज़ाद हिंद सरकार के नेतृत्व में आई.एन.ए. की अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अंग्रेजी सेना के साथ युद्ध में शौर्य प्रदर्शन और 14 अप्रैल 1944 को मोरांग में (मनीपुर राज्य) तिरंगा पहराने

की घटनाएं ज्ञात होंगी तो उनका वक्षस्थल गर्व से फूल जायेगा और इससे समस्त भारत में एक मनोवैज्ञानिक क्रांति होगी जिससे ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिल जायेंगी।

सीरमबान में उपस्थित क्रियाशील नेताजी जापान की पराजय स्वीकार करने की घटना को सुनकर तुरंत कार्य में लग गये। वे तुरंत कार से 12 अगस्त 1945 को सिंगापुर के लिए चल दिये। उसी दिन संध्या समय वहां पहुंचे और शीघ्र स्नान एवं भोजन के पश्चात् मंत्रियों एव परामर्श-दाताओं के अनेक सम्मेलनों में विचार विमर्श में डूब गए। जैसे रंगून में वैसे ही सिंगापुर में प्रश्न था कि नेताजी को अब क्या करना चाहिए? क्या उन्हें सिंगापुर में ठहरकर ही अपने सैनिकों के साथ बंदी हो जाना चाहिए? नहीं, तो वे कहां जाएं? क्या जापानी उन्हें रूस से संपर्क करने में सहयोग देंगे? यद्यपि मंत्रिमंडल की बैठक 12 अगस्त से 14 अगस्त तक रात-दिन करीब-करीब लगातार होती रही परंतु अंतिम रूप से कुछ भी निर्णय नहीं हो पाया। मंत्रिमंडल नेताजी की भावी स्थिति पर उन्हीं की उपस्थिति में इस प्रकार विचार कर रहे थे जैसे वे वहां थे ही नहीं। एक मंत्री ने कहा, "महोदय! यदि आपको अंग्रेजी सरकार ने बंदी बना लिया और यहां अथवा भारत में ब्रिटिश सम्राट के विरूद्ध युद्ध करने के अपराध में अभियोग चलाकर गोली मारने का दंड दिया तो ऐसी स्थिति में समस्त भारत उठ खड़ा होगा और उसे स्वतंत्रता मिल जायेगी? इसके विपरीत यदि अंग्रेज आपको स्वतंत्र कर देंगे तो भी यह भारत के हित में होगा। दोनों स्थिति भारत के लिए लाभप्रद होंगी।" नेताजी अब भी यही आग्रह कर रहे थे कि वे वहीं रहकर अपने सैनिकों के साथ बंदी होंगे। इस समय यही अनिश्चित निर्णय हुआ।

परंतु स्थिति में एकदम परिवर्तन उस समय आया जब अस्थायी सरकार के विधि परामर्शदाता ए.एन. सरकार बैंकाक से जापानी सैनिक अधिकारियों की ओर से नेताजी के लिए 14 अगस्त की शाम को एक महत्वपूर्ण संदेश लेकर एकाएक पहुंचे। मंत्रीमंडल के सदस्यों का कुछ-कुछ ऐसा अनुमान था कि जापनियों ने नेताजी को रूस अधिकृत मंचूरिया जाने की सुविधा देने का विश्वास दिलाया था। तत्पश्चात् उनका उत्तरदायित्व समाप्त हो जायेगा और फिर नेताजी का अपना कार्य होगा। वे स्वयं मंचूरिया में रूसियों से संपर्क करें और बंदी हो जाने का जोखम भी उठावें। परंतु नेताजी को विश्वास था कि मंचूरिया स्थित रूसी इतने बड़े भारतीय राष्ट्रीय नेता को शीघ्र ही मास्को में अपने उच्चतम अधिकारियों के पास स्थानांतरित कर देंगे। यही वे चाहते थे। इसके लिए चार वर्ष पूर्व सन 1941 में उन्होंने काबुल में रूसी राजदूत से मिलने का अत्यधिक प्रयास किया था और मास्को जाने के लिए पारपत्र लेना चाहा था। क्योंकि वे काबुल में उस समय रूसी राजदूत की सहायता नहीं प्राप्त कर सके थे, इसलिए वे इटली दूतावास की सहायता से जर्मनी गये। इसे वे दूसरी श्रेणी का सबसे

अच्छा प्रबंध समझते थे। परंतु उन्होंने मास्को को अपने कार्यो का आधार स्थान बनाने की इच्छा को छोड़ा नहीं था। यदि उनके अन्य दिशाओं में सब प्रयास विफल हो जाते तो मास्को ही से अपना कार्य आरंभ करने की अपनी इच्छा उन्होंने कभी नहीं त्यागी थी।

21. "अज्ञात यात्रा की ओर"

15 अगस्त 1945 को जापान की पराजय का समाचार अधिकृत रूस से संसार के सभी रेडियो से प्रसारित हुआ। नेताजी और उनके मंत्रिमंडल ने एकमत होकर यह निश्चय किया कि उन्हें अगले दिन प्रात:काल सिंगापुर से बैंकाक होते हुए रूस अधिकृत मंचूरिया क्षेत्र के लिए प्रस्थान करना था। 15 तारीख को नेताजी ने रात भर बैठकर भारतीय स्वतंत्रता लीग और आई.एन.ए. की समस्त शाखाओं को इस आशय के विस्तृत निर्देश दिये कि आई.एन.ए. को नागरिकों की कैसे रक्षा करनी थी, विजयी एंग्लो-अमेरिकनों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना था? रानी झांसी रेजिमेंट की लड़कियों की भोजन व्यवस्था, उनकी देखभाल और उनके लिए धन की व्यवस्था करनी थी जिससे वे शत्रु द्वारा अधिकृत क्षेत्र से बिना कष्ट उठाये मुक्त हो सकें।

दिन के आरंभ में नेताजी ने कर्नल सी.जे. स्ट्रेसी को बुलाया और उन्हें स्पष्ट निर्देश दिये कि वे सिंगापुर में समुद्र के किनारे आज़ाद हिंद फ़ौज के शहीद स्मारक का निर्माण कार्य पूर्ण करें। इस स्मारक की आधार शिला नेताजी ने आठ अगस्त को रखी थी। स्ट्रेसी ने गंभीरता से वचन दिया कि वे अंग्रेजों के सिंगापुर पहुंचने से पूर्व ही स्मारक का कार्य पूर्ण करा लेंगे। अंग्रेजों ने सिंगापुर पहुंचने के पश्चात् प्रथम कार्य देशभक्त सेना के शहीदों के स्मारक को ध्वस्त करने का किया। इस प्रकार स्मारक को नष्ट करने के कार्य का उदाहरण सभ्य समाज के युद्ध में कहीं नहीं मिलेगा।

सिंगापुर छोड़ने से पूर्व नेताजी ने 15 अगस्त को दो विशेष आदेश और जारी किये। एक आदेश में जापान के पराजय स्वीकार करने के पश्चात् उन्होंने आई.एन.ए. को संबोधित करते हुए कहा, " दिल्ली जाने के लिए कितने ही रास्ते हैं और दिल्ली पहुंचना अब भी हमारा लक्ष्य है।" और दूसरी आज्ञा में उन्होंने पूर्वी एशिया निवासी भारतीयों को संबोधित करते हुए कहा, "हमारे इतिहास में इस अपूर्व संकट के समय मुझे एक ही बात कहनी है। अपनी इस अस्थायी विफलता से हतोत्साहित न हों। प्रसन्न रहें एवं अपने उत्साह को नीचे न गिरने दें और भारत के भविष्य के संबंध में अपने विश्वास को सदैव दृढ़ रखें। भारत स्वतंत्र होगा और निकट भविष्य में ही होगा। जय हिंद।" सुभाषचंद्र बोस।

अगस्त 16 का प्रातःकाल निकट था। नेताजी अपनी डेस्क से उठे और शीघ्र अपना कुछ निजी सामान जिसमें वस्त्रों का एक बंडल भी था, संभाला और उस यात्रा के लिए तैयार हुए जिसे वे "अज्ञात लक्ष्य की ओर अभियान" कहते थे। वे सिंगापुर अंतिम बार छोड़ रहे थे। इस अनिश्चित लक्ष्य की यात्रा में उनके साथ कर्नल हबीबुर्रहमान-जो स्टाफ के उपमुख्य अधिकारी थे, कर्नल प्रीतम सिंह और इस पुस्तक के लेखक थे। हम एक बोंबर हवाई जहाज में प्रातः दस बजे सवार हुए और उसी दिन अपराह्न में बैंकाक पहुंच गये। कुछ ही क्षणों मे नेताजी के वहां पहुंचने का समाचार यहां के रहने वाले समस्त भारतीयों में फैल गया और तब से उस समय तक जब तक नेताजी और उनकी पार्टी के व्यक्तियों ने दूसरे दिन प्रातः हवाई अड्डे के लिए प्रस्थान नहीं किया नेताजी के निवास स्थान और वहां तक पहुंचने के मार्गों पर भारतीयों की अपार भीड़ एकत्र रही। वे यह जानने के लिए उत्सुक थे कि नेताजी का भावी कार्यक्रम क्या था? और उनका गंतव्य स्थान कहां था? मध्य रात्रि के लगभग उन्होंने भोजन किया और सैनिक तथा नागरिक अधिकारियों एवं स्थानीय नेताओं से प्रातःकाल कुछ ही क्षणों के लिए सोने से पूर्व तक बातचीत की।

17 अगस्त 1945 के प्रातःकाल ही नेताजी बैंकाक हवाई अड्डे के लिए उन लोगों से अश्रुपूर्ण विदाई लेकर चले जो उनके बंगले पर संपूर्ण रात्रि रहे थे। विदाई देने वालों में आपूर्ति विभाग मंत्री परमानंद, चीफ आफ स्टाफ मेजर जनरल भोंसले, सिंगापुर एवं रंगून के मुख्यालयों के वैयक्तिक सचिव पी.एन. पिल्लई एवं 1943 से जब नेताजी सिंगापुर आये थे उनके विश्वस्त स्टैनो भासकरन भी सम्मिलित थे। बैंकाक से सैगोन जाने वाली नेताजी की पार्टी में कर्नल हबीबुर्रहमान, कर्नल गुलजारा सिंह, कर्नल प्रीतम सिंह और सन् 1942 में नेताजी की जर्मनी से जापान की पनडुब्बी में 90 दिन की यात्रा के एकमात्र भारतीय साथी मेजर आबिद हसन एवं परामर्शदाता तथा रंगून में लीग के मुख्यालय के महासचिव देवनाथ दास एवं इस पुस्तक के लेखक सम्मिलित थे। जनरल इसोडा, श्री हचिया और जापानी दुभाषिया श्री नार्गशी भी इस पार्टी में थे। हम दो हवाई जहाजों में थे और सैगोन में दस बजे प्रातः पहुंच गये थे। वहां हम सैगोन लीग के एक अधिकारी नारायण दास के निवास पर गये। जनरल इसोडा हवाई अड्डे से तुरंत दक्षिणी पूर्वी भाग की जापानी सेना के सुप्रीम कमांडर फील्ड मार्शल काउंट टरोची के मुख्यालय एवं स्वास्थ्य केंद्र दलात चले गये। जनरल इसोडा दलात से अपराह्न से पूर्व ही वापस आ गये और सीधे मोटर द्वारा नेताजी के निवास पर पहुंचे।

संभवत: नेताजी के जीवन का सबसे अधिक महत्व का क्षण वह था जब उन्हें तुरंत इस बात का निर्णय करना था कि क्या वे जापानी बोंबर में उपलब्ध एक-मात्र सीट का उपयोग करके अपनी अंतिम ज्ञात यात्रा पर जाना स्वीकार करेंगे? बोंबर सैगोन हवाई अड्डे से एक मिनट के नोटिस पर चलने के लिए इतना तैयार था कि इसके इंजन चल रहे थे। हवाई अड्डे से कुछ ही दूर नेताजी कुछ घंटे पहले जिस घर में आये थे उसी घर में उन्होंने खड़े-खड़े साथियों से शीघ्र विचार-विमर्श किया। कोई औपचारिकता नहीं दिखाई गई। किसी ने किसी से बैठने के लिए नहीं कहा और न किसी ने जल पीने के लिए पूछा यद्यपि दिन की गर्मी और थकान के कारण सब प्यासे थे। जापानी इस बात पर दृढ़ थे कि वे उन्हें एक ही सीट दे सकते थे। उसे स्वीकार करो अथवा छोड़ दो। उस सीट को स्वीकार कर लेने की दशा में नेताजी के साथ कोई भी भारतीय नहीं होगा और उड़ान में यदि कोई घटना घटी तो नेताजी को क्या हुआ? इसका कोई भारतीय साक्षी नहीं होगा। यदि वे सीट अस्वीकार करके सैगोन रह जाते तो अंग्रेजी-अमेरिका सेना जो किसी दिन भी सैगोन पहुंच सकती थी उन्हें निश्चय ही बंदी बना लेगी। इस प्रकार अंग्रेजी-अमेरिका सेना से बच निकलने की योजना समाप्त हो जायेगी और वे किसी उपयुक्त स्थान से स्वतंत्रता की लड़ाई जारी नहीं रख सकेंगे। अत: उन्हें एक कष्टप्रद निर्णय लेना था। उन्होंने अपने मन में निर्णय ले लिया था। जब उन्होंने अपने साथियों से शीघ्र उत्तर देने के लिए कहा तो उन्होंने विवशता से सहमति दे दी। उन्हें बिना किसी साथी के लिए अकेले ही यात्रा पर जाना था। परंतु अंतिम समय जापानियों ने उन्हें एक सीट और दे दी। कर्नल हबीबुर्रहमान सैगोन से उनके साथ उस अंतिम ज्ञात यात्रा पर गये।

22. अंतिम ज्ञात हवाई उड़ान

नेताजी और हबीब ने बोंबर जहाज में प्रवेश करने से पूर्व हम पांचों को जो पीछे रह गये थे 'जयहिंद' कहा। जापनियों ने नेताजी को यह वचन दिया था कि वे शीघ्र ही किसी हवाई जहाज की व्यवस्था करेंगे जिससे हमें भी नेताजी के गंतव्य स्थान पर पहुचाया जा सके। हम सैगोन में दो दिन नेताजी के संबंध में कोई समाचार बिना प्राप्त किये पड़े रहे। 19 तारीख को जापनियों ने हमें एक सीट जापान के लिए दी और दूसरों की हनोई जाने के लिए व्यवस्था की। उन्होंने हमें यह बताया कि जापान जाने वाला व्यक्ति नेताजी से शीघ्र मिल लेगा और दूसरे इसके पश्चात उनके पास पहुंच जायेंगे। अब हमें निर्णय करना था कि जापान कौन जाये? मेरे साथियों ने मुझे ही जाने के लिए कहा और मैं गया।

वायुयान जापान के लिए 11 बजे उड़ा और वायुयान के आकाश में उड़ने से कुछ मिनट पूर्व दो जापानियों ने मुझे बताया कि नेताजी को कुछ हो गया था। मैं हवाई जहाज में सवार होने के लिए शीघ्रता में था इसलिए उनसे कोई और प्रश्न न कर सका। जब वायुयान कैंटन हवाई अड्डे पर पेट्रोल लेने संध्या समय उतरा तो जापानी कर्नल ने जो मेरे साथ था मुझे स्तब्ध करने वाला समाचार दिया कि नेताजी सैगोन से प्रस्थान करने के दूसरे दिन ही फोरमोसा द्वीप में वायुयान के टकरा जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। मैंने कर्नल से स्पष्ट कहा कि यदि जापानी नेताजी के शव को सिंगापुर अथवा टोकियो नहीं ले जाते तो नेताजी की वायुयान दुर्घटना के कारण मृत्यु की जापानी कहानी का पूर्वी एशिया स्थित भारतीय विश्वास नहीं करेंगे। जब मैं 22 अगस्त 1945 को टोकियो पहुंचा तो अश्रुपूर्ण नेत्रों से जापान के विदेश मंत्रालय के अधिकारियों ने मुझे वायुयान दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु का समाचार पुनः बताया। और उन्होंने मुझ से टोकियो रेडियो से प्रथम बार प्रसारण के लिए नेताजी के वायुयान दुर्घटना-ग्रस्त हो जाने के समाचार को लिखने में सहायता मांगी। पूर्वी एशिया में भारतीय इस समाचार को सुनकर बहुत दुखी हुए परंतु जैसी मैंने जापानियों को चेतावनी दी थी उन्हें उनकी मृत्यु का विश्वास नहीं हुआ।

23. ऐतिहासिक मुकदमा

जब इंग्लैड और अमेरिका ने पूर्वी एशिया में पुनः प्रभुत्व स्थापित कर लिया तो उन्होंने आई.एन.ए. के अधिकारियों एवं सैनिकों को बंदी करके भारत भेज दिया। उसमें से बहुतों को दिल्ली के लाल किले में रखा गया और कुछ को नई दिल्ली छावनी में काबुल लाइंस भेज दिया। यह विधि विडंबना भी थी कि 17 हजार आई.एन.ए. के सैनिक भारत में युद्ध बंदी के रूप में लाये गए जबकि दिल्ली में विजेता के रूप में आना था। वाइसराय भवन पर तिरंगा फहराना था और लाल किले के अन्दर विजय परेड करनी थी। इसके विपरीत वे लाल किले में युद्ध बंदी के रूप में बंद थे और ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के अपराध में अभियोग चलाये जाने की प्रतीक्षा में थे। ऐसी स्थिति अक्तूबर/नवंबर 1945 में थीं।

निश्चय ही आई.एन.ए. युद्ध स्थल पर स्वतंत्रता की लड़ाई में विजय प्राप्त करने में असफल रही परंतु जैसा कि अपनी पुस्तक 'दी स्प्रिंगिंग टाइगर' में मेजर ह्यूग टोपी ने लिखा है कि आई.एन.ए. के पहुंचने पर भारत में 'भयकर विघटन' होगा, वास्तव में आई.एन.ए. के दिल्ली पहुचने पर देश में ब्रिटिश राज्य का अंत होने में शीघ्रता हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति अगस्त 1945 के मध्य में हुई। उसी समय भारत में फुसफुसाहट होने लगी कि आई.एन.ए. के बीस हजार सैनिक लालकिले में बंद थे और उनमें से छह को गोली मार दी गयी थी। जब तक युद्ध चलता रहा तब तक जनता द्वारा इस विषय पर बात करना खतरनाक था परंतु 20 अगस्त को जवाहर लाल नेहरू ने अपने प्रेस को दिए गए वक्तव्य में कहा, "अब आजाद हिंद फ़ौज, जैसा कि उसका नामकरण किया गया है, के सैनिक बहुत बड़ी संख्या में बंदी हैं और उनमें से कुछ को मार दिया गया है। किसी अन्य समय पर भी इनके साथ यह कठोर व्यवहार अनुचित था परंतु इस समय जब यह कहा जा रहा है कि भारत में बहुत परिवर्तन होने वाला है यदि इन सैनिकों के साथ साधारण बागियों जैसा व्यवहार किया गया तो एक भयंकर त्रुटि होगी जिसके परिणाम दूरगामी होंगे। इनको दंडित करने का अर्थ भारत एवं उसकी समस्त जनता को दंडित करना माना जायेगा और लाखों हृदयों में गहरा घाव बन जायेगा।" इस वक्तव्य ने समस्त देश में एक

ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जिससे आई.एन.ए. का विषय संपूर्ण भारत में विचार-विमर्श के लिए मुख्य विषय बन गया। जनता ने इन सैनिकों को मुक्त करने की मांग की। सरकार ने जनसाधारण के विचार को नर्म करने का प्रयास यह कह कर किया कि वह उन सैनिकों के साथ मृदुता का व्यवहार करेगी "जो किसी दबाव-वश भ्रमित होकर शत्रु सेना में सम्मिलित हो गए थे।" परंतु यह अवास्तविक एवं वृथा उपाय था क्यों समस्त 17 हजार सैनिकों ने पश्चाताप करने की मांग अस्वीकृत कर दी और वे सब स्वेच्छा से सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के दोष के लिए कठोरतम दंड सहन करने के लिए प्रस्तुत थे।

कांग्रेस कार्य कमिति की बैठक सितंबर के मध्य पूना में हुई और उसने घोषणा की कि "यदि भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में कष्ट उठाने वाले अधिकारियों एवं सैनिकों को, चाहे उनका यह कार्य त्रुटिपूर्ण ही रहा हो, दंडित किया गया तो यह एक दुखद घटना होगी।वे नए स्वतंत्र भारत के निर्माण में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।" समिति ने इन पुरुषों एवं स्त्रियों को स्वतंत्र करने के लिए सरकार से आग्रह किया। एक सप्ताह पश्चात कांग्रेस की कार्य समिति ने एक सुरक्षा समिति बनायी जिसका कार्य आई.एन.ए. के पुरुषों एवं स्त्रियों पर अभियोग चलाये जाने की दशा में उनके लिए रक्षात्मक कार्यवाही करना था। इस समिति के सदस्य पुराने प्रमुख राष्ट्रीय नेता सर तेज बहादुर सप्रू, कैलाश नाथ काटजू, भूलाभाई देसाई, जवाहरलाल नेहरू, आसफ अली (संयोजक) रघुनंदन सरन थे। इन्हें अन्य सदस्य नियुक्त करने का भी अधिकार था। प्रतिवादी वकीलों में राय बहादुर बद्रीदास, लाहौर हाई कोर्ट के भूतपूर्व जज कुंवर सर दलीप सिंह एवं बख़शी सर टेक चंद, पटना हाई कोर्ट के भूतपूर्व जज पी.एन. सैन सम्मिलित थे। इस प्रकार यह भारत के विधिवेत्ताओं का सर्वोत्तम वर्ग था जो स्वमेव आजाद हिंद फौज के पक्ष में अभियोग का प्रतिवाद करने के लिए प्रस्तुत हुआ था।

महात्मा गांधी जो इस समय हरिजन बस्ती में ठहरे हुए थे, आइ.एन.ए. के अधिकारियों से किले के अंदर और बाहर मिलते थे।

1 दिसंबर 1945 को जब मैं जवाहरलाल नेहरू से उस समय मिला जब वे प्रतिवादी की ओर से गवाही देने की प्रतीक्षा में थे तो मैंने उन्हें बताया कि पूर्वी एशिया में आई.एन.ए. के अनेक सैनिक अब भी भारत आने की प्रतीक्षा में थे तो जवाहरलाल नेहरू ने उत्तर दिया कि वे नहीं चाहते कि वे व्यक्ति भी भारत आकर भारत-निवासियों के जन समुद्र में विलीन हो जाए।

लालकिले में शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन पर अभियोग संबंधी मोतीराम के एक अत्युत्तम अभिलेख के आमुख में जवाहरलाल ने 17 जनवरी 1946 को

लिखा था "अभियोग में नाटक किया गया और उसे भारत और इंग्लैंड के बीच पुराने विवाद का प्रत्यक्ष रूप दिया गया। यह अभियोग भारतीयों एवं भारत के शासकों की इच्छा के बीच पुराने विवाद शक्ति परीक्षण का विषय बन गया। अंत में जनसाधारण की इच्छा की ही विजय हुई।"

शाहनवाज, सहगल तथा ढिल्लन के विरुद्ध सैनिक न्यायालय में कार्यवाही की पृष्ठ भूमि में यही मनोवैज्ञानिक भाव था। इस सैनिक न्यायालय की अध्यक्षता मेजर जनरल ब्लैक्स लैंड लाल किले के अंदर निवासालय की दूसरी मंजिल पर कर रहे थे। वादियों की ओर से भारत के एडवोकेट जनरल एन.पी.इंजीनियर वकालत कर रहे थे। अभियोग की कार्यवाही संवाददाताओं एवं जनता के लिए खुली थी। इसलिए जनता को समाचार पत्रों द्वारा दैनिक कार्यवाही की सूचना प्रतिदिन अत्यंत विस्तार के साथ मिल जाती थी। ब्रिटेन और अमेरिका की समाचार एजेंसियों एवं समाचार पत्रों ने भी अपने प्रतिनिधि अभियोग की कार्यवाही का विवरण प्राप्त करने के लिये दिल्ली भेजे थे।

लालकिले में अभियोग संबंधी कार्यवाही ही उन दिनों जनसाधारण की चर्चा का विषय थी। जैसे-जैसे आई.एन.ए. के पराक्रम की कहानी प्रथम बार जनता को ज्ञात होती थी, उसका उत्साह बढ़ता जाता था। समस्त देश में गौरव एवं गरिमा की ज्योति प्रज्वलित हो गई थी और जनमानस में आत्मसम्मान जागृत हो गया था। समस्त राष्ट्र ने इस तथ्य से अपने पौरुष का अनुभव किया कि मुक्ति सेना पूर्ण रूपेण भारतीय थी। उन्हीं के द्वारा उसका गठन किया गया था, उसके भारतीय अधिकारी और सैनिकों ने भारत बर्मा सीमा पर विदेशी शासकों के विरुद्ध कितने ही स्थानों पर युद्ध किया था और वह इस स्थिति में पहुंच गई थी कि बंगाल और आसाम से, संभवतः भारत से भी अंग्रजों को बाहर निकाल देती।

24. सम्राट के विरुद्ध युद्ध

सैनिक अभियोग 5 नवंबर को आरंभ हुआ और 31 दिसंबर 1945 को समाप्त हुआ। तीनों अभियुक्त, शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन सैनिक वेशभूषा में थे, केवल उन पर बैज नहीं थे। न्यायालय उनको ब्रिटिश सेना में उनके उसी पद के नाम से कप्तान शाहनवाज, कप्तान सैहगल, ले. ढिल्लन कहकर पुकारता था जिन पर वे ब्रिटिश सेना में थे। शेष भारतवासी उन्हें उनके आई.एन.ए. के पदों के अनुसार मेजर जनरल शाहनवाज, कर्नल सहगल, कर्नल ढिल्लन के नामों से जानते थे।

आरोप-पत्र पढ़ा गया। उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध अनेक आरोप थे। परंतु तीनों के विरुद्ध एक सामान्य आरोप यह था कि उन्होंने ब्रिटिश सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। उन्होंने दोष स्वीकार नहीं किया। लगभग तीस वर्ष के अंतराल के बाद बैरिस्टर की वेशभूषा पहने जवाहर न्यायालय में सबकी दृष्टि के केंद्रबिंदु थे। सर तेज बहादुर सप्रू के अस्वस्थ हो जाने के कारण बचाव समिति के अन्य सदस्यों से परामर्श लेकर अभियोग की कार्यवाही में बचाव का उत्तरदायित्व भूलाभाई को सौंपा गया।

दिन प्रतिदिन भूलाभाई देसाई लाल किले में जाते थे। वहां एक तंबू में शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन एवं अन्य आई.एन.ए. के अधिकारियों से बचाव की तैयारी के लिए मिलते थे। आई.एन.ए. के अधिकारियों के इस आवागमन से उन्हें पारस्परिक पुनर्मिलन का अवसर मिलता था क्योंकि इससे पूर्व युद्धकाल में वे विभिन्न स्थानों पर युद्धरत रहने के कारण पृथक हो गये थे। यह पुनर्मिलन भावनामय था और इस अवसर पर लालकिला 'जयहिंद' के अभिवादन से गूंज उठता था। ये अधिकारी एक-दूसरे के प्रति शुभेच्छा व्यक्त करते थे और आपस में गले मिलते थे। इस समय लालकिले में एक प्रमुख एवं अद्भुत व्यक्ति जनरल मोहन सिंह भी थे जिन्होंने सन् 1942 में प्रथम आई.एन.ए. का निर्माण किया था और जिन्हें जापानियों की अवज्ञा करने के कारण युद्ध समाप्ति तक कारागार में रहना पड़ा था।

टैंट में बैठकर भूलाभाई देसाई ने उन समस्त अभिलेखों का अध्ययन किया जिनमें आई.एन.ए. के जन्म, गठन, विघटन एवं पुनर्जन्म तथा वीरतापूर्ण उपलब्धियां और आज़ाद हिंद की अस्थायी सरकार और उसकी शक्तिशाली देशों से मान्यता, आई.एन.ए.

का नेतृत्व एवं अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार आई.एन.ए. के युद्धबंदियों की उस समय की स्थिति जबकि अंग्रेजों ने मुक्ति सेना को बंदी बनाया था का विवरण दिया था। जैसे-जैसे भूलाभाई देसाई को अस्थायी सरकार के निर्माण के संबंध में अधिक प्रमाण मिलते जाते थे वैसे-वैसे वे नेताजी की दूरदर्शिता एवं उनकी अद्भुत संगठन शक्ति को देखकर चकित हो जाते थे। क्रांतिकारी युद्ध में कार्यरत रहते हुए भी नेताजी ने छोटी-से-छोटी बात पर भी गहन विचार किया। यह जानकर भूलाभाई देसाई कभी-कभी अवाक् रह जाते थे। स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी उन्होंने रात-दिन परिश्रम करके उन तथ्यों को ज्ञात कर लिया जो बचाव के लिए अकाट्य थे। 5 नवंबर 1945 को जब अभियोग की कार्यवाई आरंभ हुई तो वे पूर्णतया तैयार थे।

5 नवंबर से 31 दिसंबर 1945 के मध्य अर्थात अभियोग कार्यवाही के 57 दिनों के दौरान वादी की ओर से 30 साक्षी प्रस्तुत किए गए और बचाव पक्ष की ओर से 12साक्षी उपस्थित हुए। वादी के साथियों ने एक मास से अधिक समय लिया परंतु बचाव पक्ष के साक्षी न्यायालय के समक्ष केवल एक सप्ताह ही रहे।

बचाव पक्ष के साक्षियों ने आठ दिसंबर को गवाही देना आरंभ की। उससे एक दिन पूर्व तीन अधिकारियों ने, जिन पर अभियोग चलाया जा रहा था, न्यायालय में बयान दिए।

सामान्य व्यक्ति, नागरिक और सैनिक कानून के अंतर से अनभिज्ञ था। उसे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी परंतु वे इन तीन अधिकारियों के भाग्य में अत्याधिक रुचि रखते थे क्योंकि ये तीन अधिकारी ही आई.एन.ए. के एवं उन समस्त भावनाओं के प्रतीक थे जिनके लिए नेताजी लड़ते रहे। इन तीनों को किसी एक आरोप अथवा सब आरोपों के कारण फांसी का दंड दिया जा सकता था। संपूर्ण देश में भावना उच्च शिखर पर थी और मनुष्यों के हृदयों में उत्कंठा जाग्रत हो गयी थी। भारतीय जनता की ओर से यह धमकी दी जा रही थी कि यदि इन तीन व्यक्तियों का बाल भी बांका हुआ तो भारत में एक भी अंग्रेजी जीवित नहीं बचेगा।

लालकिले के अंदर सैनिक अदालत कानूनी कार्यवाही में रत थी परंतु किले के बाहर समस्त देश एक छोर से दूसरे छोर तक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भावनाओं के उत्कर्ष पर था।

वादी यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे कि तीनों अधिकारी सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने के एवं अन्य कार्यों के भी दोषी थे जिसके कारण उन्हें भारतीय सैनिक कानून के अंर्तगत दंडित किया जा सकता था। बचाव पक्ष अंतर्राष्ट्रीय अधिनियम के अंतर्गत उनके कार्यों को वैध प्रमाणित करके उचित बता रहा था। आई.एन.ए. ने एक विधिवत निर्मित सरकार के अंतर्गत युद्ध किया। इस सरकार को विश्व के

नौ देशों की मान्यता प्राप्त थी और आई.एन.ए. अपनी ही आज़ाद हिंद फौज अधिनियम की धाराओं द्वारा नियंत्रित थी।

भूलाभाई ने अपने तर्क दो दिन तक न्यायालय के समक्ष रखे और बिना कागज पढ़े जबानी बोले।

सर एन.पी. इंजिनियर को अपना लिखित व्यक्तव्य पढ़ने में चार घंटे लगे। वादी और प्रतिवादी के साक्षियों की गवाहियों के बीच तीनों अभियुक्तों के बयान न्यायालय के समक्ष हुए जिनसे भारत की आत्मा झंकृत हो उठी।

शाहनवाज ने कहा—"ब्रिटिश सम्राट के प्रति राजभक्ति की परंपरा में जन्म लेने के कारण मैंने भारत को युवक ब्रिटिश अधिकारियों की दृष्टि के माध्यम से देखा था किंतु जब मैं नेताजी से मिला और उनके भाषणों को जीवन में प्रथम बार सुना तो मैंने भारत को एक भारतीय की दृष्टि के माध्यम से देखा। मैंने नेताजी में नेतृत्व पाया और इसलिए मैं उनका अनुगामी बना। मेरे सम्मुख प्रश्न था—सम्राट अथवा देश? मैंने देशभक्त होने का निर्णय लिया और नेताजी को विश्वास दिलाया कि मैं देश के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हूं।"

सहगल ने अपने बयान में कहा—"हमें यह अनुमान हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने स्वमेव उन बंधनों को तोड़ दिया है जिनसे हम ब्रिटिश सम्राट के साथ बंधे थे और इस प्रकार हमें उनके प्रति समस्त कर्त्तव्यों से मुक्त कर दिया है। हमें यथार्थ रुप से यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सम्राट ने हमारी रक्षा का उत्तरदायित्व वहन करना समाप्त कर दिया है तो वे हमसे राजभक्ति की कैसे आशा कर सकते हैं।"

कर्नल ढिल्लन ने देहरादून मिलिट्री एकेडेमी के चेटवुड हाल में अंकित शब्दों का स्मरण दिलाते हुए कहा—"तुम्हारे देश का सम्मान, उसकी सुरक्षा और कल्याण का स्थान सर्वोपरि है। मैंने अनुभव किया कि यदि इस अवसर पर एक शक्तिशाली राष्ट्रीय सेना का निर्माण किया जाए जिसमें मनुष्य स्वेच्छा से सम्मिलित हो तो हम विदेशी शासन से अपने देश को ही मुक्त नही करेंगे अपितु जापानियों का भी सामना करने में समर्थ होंगे यदि वे विश्वासघात करके हमें स्वतंत्रता के युद्ध में सहायता देने के स्थान पर अपने लाभ के लिए हमारा शोषण करने लगेंगे।"

इन तीनों अधिकारियों के प्रेरक बयानों ने समस्त देश के उन लाखों भारतीयों के मन में एक उत्साह की लहर दौड़ा दी जो प्रतिदिन न्यायालय की सैनिक कार्यवाही का अनुशीलन करते थे। जनता के लिए वादी की ओर से एवं तत्पश्चात् प्रतिवादी की ओर से हुई साक्षियों का कम महत्व था। इसमें उनकी रुचि कम थी। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि देश की जनता उस विस्तृत साक्षीकरण को पढ़ने में रुचि नहीं रखती थी जिससे समाचार पत्रों के पृष्ठ भरे रहते थे।

25. भूलाभाई का अपूर्व वक्तव्य

इस समस्त कार्यवाई में सबसे अधिक गौरव भूलाभाई देसाई को मिला जिनके अपूर्व तर्क दो दिन तक चले और जो संसार के किसी भाग में ऐसे अभियोगों में सम्मानित स्थान प्राप्त करते रहेंगे।

उनके ये शब्द समस्त भारतीय जनता के हृदय में प्रतिध्वनित हो उठे जब उन्होंने कहा—"इस समय न्यायालय के समक्ष किसी परतंत्र जाति द्वारा अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करने का अधिकार कसौटी पर है।" भूलाभाई देसाई अंतर्राष्ट्रीय कानून का ही कथन नहीं कर रहे थे अपितु दैविक नियमों का भी उल्लेख करते हुए कह रहे थे कि संसार में सभी व्यक्ति स्वतंत्र जन्म लेते हैं और उन्हें स्वतंत्र रहने का अधिकार है।

भूलाभाई ने कहा कि अब इसमें कोई संदेह नहीं रहा है कि अस्थायी सरकार विधिवत बनायी गयी थी और उसको धुरी शक्तियों से मान्यता प्राप्त थी। उस सरकार के पास अपनी सेना थी जो नियमानुसार संगठित थी। उनके अपने विशेष बैज एवं संकेत चिह्न थे और उनका कार्य नियमानुकूल नियुक्त किए गये अधिकारियों द्वारा चलाया जाता था। इस सेना का संचालन आई.एन.ए. के विधान के अनुसार होता था।

इस सरकार को यह अधिकार था कि वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु युद्ध की घोषणा करे। "सरकार ने अपने अधिकार के अंतर्गत सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी। सेना ने सरकार के अधीन होने के कारण उसकी आज्ञाओं का पालन किया।"

भूलाभाई ने प्रतिपादित किया कि "अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए युद्ध करना पूर्णतया उचित था। यह न्याय की विडंबना ही होगी कि हम से कहा जाए कि भारतीयो! तुम जर्मनी, इटली जापान के विरुद्ध इंग्लैंड की स्वतंत्रता के लिए युद्ध करो और उस स्थिति को अवैध बताया जाए जब एक स्वतंत्र भारतीय राज्य इंग्लैंड सहित किसी भी देश से अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए युद्ध करने की इच्छा करे। अत: हमारा विश्वास है कि इस युद्ध के औचित्य पर विचार करना आवश्यक नहीं है।"

भूलाभाई ने दृढ़ता से कहा कि दो राज्यों के बीच युद्ध के दौरान गोली चला

कर शत्रु को मारने की घटना को हत्या करने की संज्ञा नहीं दी जा सकती। संक्षेप में भूलाभाई के दो दिन के तर्क उस स्मरणीय तथ्य का प्रतिपादन कर रहे थे जिसके लिए नेताजी और आई.एन.ए. भारत को स्वतंत्र करने हेतु युद्धरत हुए थे।

3 जनवरी 1946 को सैनिक न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों को सम्राट के विरुद्ध युद्ध करने का दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन देश-निर्वासन, बरखास्तगी, एवं अवशेष वेतन और भत्ते न देने का दंड दिया। कमांडर-इन-चीफ ने आजीवन निर्वासन के दंड से तीनों अभियुक्तों को मुक्त कर दिया परंतु अवशेष वेतन एवं भत्ते न देने और बरखास्तगी के दंड को स्थिर रखा।

सभी तीनों अभियुक्तों को उसी दिन मुक्त कर दिया गया। देश हर्ष से उन्मत्त हो गया। लाल किले के अभियोग के नायक अपने इस उन्मत्त स्वागत से अभिभूत हो गए। जहां कहीं भी वे गए जन-समूह ने उन्हें घेर लिया।

इस प्रकार लाल किले में नाटक का पटाक्षेप हुआ परंतु भारत में अंग्रेजी राज्य का अंत करने की अंतिम कार्यवाही से पर्दा उठा। उसका पटाक्षेप लाल किले में चलाए गए अभियोग के 18 मास पश्चात हुआ।

भारत में आई.एन.ए. के आगमन एवं लाल किले में चलाए गए अभियोग का प्रभाव देश में सशस्त्र सेना के भारतीय अधिकारियों एवं सैनिकों पर पड़ा। अंग्रेज अधिकारियों को अपने गुप्तचर विभाग द्वारा ज्ञात हुआ कि अब वे भारत में शासन करने के लिए भारतीय सेना पर और अधिक निर्भर नहीं रह सकते थे।

नौ सेना और वायु सेना के अंग्रेज अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। इससे भारत में ब्रिटिश राज की नींव हिल गयी। लंदन में ब्रिटिश सरकार ने अविलंब भारत छोड़ने का निर्णय लिया। ब्रिटिश सरकार की ओर से एक मंत्रिमंडलीय नियोग (कैबिनेट मिशन) भारत भेजा गया जिसका कार्य भारत से ब्रिटिश शासन हटाने की योजना तैयार करना था। लार्ड लुई माउंटबैटन, लार्ड वावेल के स्थान पर भारत के अंतिम वाइसराय नियुक्त हुए। उन्होंने योजना बनायी और उसके अनुसार भारत से ब्रिटिश शासकों को हटाने की क्रिया प्रारंभ की।

अगस्त 14/15, 1947 की मध्य रात्रि के समय उन्होंने यूनियन जैक को उतरते हुए एंव उसके स्थान पर राष्ट्रीय तिरंगे को फहराते देखा। वे कुछ समय तक स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल रहे और उनके पश्चात् चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य पदासीन हुए। जवाहरलाल नेहरू 15 अगस्त 1947 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने।

26. आज़ाद हिंद फ़ौज की प्रतिज्ञा पूर्ति

16 अगस्त1947 का दिन आई.एन.ए. के लिए अत्यंत भावुकतापूर्ण दिवस था। उस दिन स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने लाल किले के प्राचीर पर तिरंगा फहराया। इसी दिन भारत की स्वतंत्र सरकार ने इस ऐतिहासिक अवसर पर एक चित्र इस शीर्षक के साथ जारी किया—"भारत की स्वतंत्रता से संबंधित एक प्रभावोत्पादक उत्सव में स्वतंत्र भारत का राष्ट्रीय झंडा दिल्ली के लाल किले के बुर्जों से युक्त प्राचीर पर 16 अगस्त को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने फहराया। इस समय आज़ाद हिंद फ़ौज के पुराने योद्धा अपनी अपूर्ण प्रतिज्ञा को पूर्ण होते हुए देखने के लिए मौजूद थे।" आई.एन.ए. की चार वर्ष पुरानी प्रतिज्ञा दिल्ली में वाइसराय भवन पर तिरंगा फहराने की और लाल किले में विजय परेड करने की थी। पूर्वी एशिया की जनता के लिए जिसने इस प्रतिज्ञा को नेताजी के मुख से सुना था यह घटना एक भावनात्मक स्वप्न के समान थी। पुराने क्रांतिकारी बाबा अमरसिंह और बाबा उसमान खां का भी यही लक्ष्य था। हर कीमत पर इसकी उपलब्धि आई.एन.ए. का सैनिक उद्देश्य था। यद्यपि युद्धभूमि पर आई.एन.ए. पराजित हो गयी थी परंतु अब भी वह उसी युद्ध की पावन वेशभूषा में थी। आई.एन.ए. की एक टुकड़ी ने लाल किले पर आयोजित उत्सव में भाग लिया।

लाल किले के मुकदमे के पश्चात् जब उत्तेजना और वीरपूजा समाप्त हो गयी तो स्वतंत्र भारत की सरकार संसार के अन्य देशों के बीच अपने स्वतंत्र राष्ट्र की नयी भूमिका तैयार करने में लग गयी। तब आज़ाद हिंद फौज ने अपने आपको एकाकी बीहड़ बन में पाया। जब आई.एन.ए. की प्रशंसा की लहर देश में व्याप्त थी तो सरदार बल्लभभाई पटेल ने कलकत्ता की एक जनसभा को संबोधित करते हुए कहा था कि आई.एन.ए. स्वतंत्र भारत की सेना की केंद्रीय-शक्ति होगी परंतु ऐसा नहीं हुआ। आई.एन.ए. संबंधी शोध एवं कल्याण समिति, जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल थे, एवं उसके अवैतनिक महासचिव श्री प्रकाश ने उसके सैनिकों की नियुक्ति का अत्यधिक प्रयास किया। परंतु फिर भी आई.एन.ए. का विलय स्वतंत्र भारत की सेना में न हो सका। उसके अधिकारियों एवं सैनिकों को नए सिरे से प्रार्थना पत्र भेजने के लिए कहा गया। कारण यह बताया गया कि उनके सीधे विलय से

सशस्त्र सेना के गठन संबंधी रूप के अस्तव्यस्त हो जाने की वैधानिक कठिनाई उत्पन्न होती थी।

युद्ध समापन के बाद जब अंग्रेज आई.एन.ए. के सैनिकों को पूर्वी एशिया से बंदी बनाकर भारत लाए थे तो उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था "श्वेत, भूरे और काले।" जो आई.एन.ए. में सम्मिलित नहीं हुए 'श्वेत' थे। जिन्होंने 'भ्रमित' होकर आई.एन.ए. को अपनाया, वे 'भूरे' थे और जो पश्चाताप न करने पर दृढ़ थे और कहते थे कि यदि फिर अवसर मिले तो वे अंग्रेजों के विरुद्ध पुनः युद्ध करेंगें उन्हें 'काला' कहा गया और उन्हें भारतीय सेना से बरखास्त कर दिया गया। उनको अवशेष वेतन और भत्ता प्राप्त करने से वंचित कर दिया गया। वास्तव में 'काले' ही बहुसंख्या में थे और अंग्रेजों ने इन देशभक्तों से जिन्होंने उनके भारत में राज्य की समाप्ति की, बदला लिया।

आई.एन.ए. ने अनुभव किया कि इस प्रकार उसकी देशभक्ति के लिए दंडित किया गया था। स्वतंत्र भारत की केंद्रीय एवं राज्य सरकारों ने आई.एन.ए. के सैनिकों और अधिकारियों को विभिन्न कार्य दिये। कुछ को कनिष्ठ मंत्री एवं कुछ को राजदूत नियुक्त किया गया। कुछ सैनिक प्रादेशिक सशस्त्र पुलिस में सम्मिलित कर लिए गए। परंतु आई.एन.ए. केवल सेना के लिए उपयुक्त थी उसमें ही उसे समाहित नहीं किया गया।

आई.एन.ए. की बंबई की एक रैली में 1949 में भारत सरकार से आग्रह किया गया कि सरकार को उन वीरों के परिवारों और आश्रितों के प्रति अपना पुनीत कर्तव्य स्वीकार करना चाहिए जिन्होंने अपना जीवन स्वतंत्रता के युद्ध में बलिदान कर दिया गया था। सरकार को घायलों एवं अपंगों के प्रति भी अपना कर्तव्य पूर्ण करना चाहिए। रैली में सरकार से यह भी कहा गया कि आई.एन.ए. के प्रत्येक स्तर के सैनिक को भारत की सशस्त्र सेना में उपयुक्त पद पर पुनः नियुक्त करके भारत की सेवा करने का अवसर दिया जाए और उनके न्याय युक्त अवशेष वेतन आदि का भी भुगतान किया जाए।

दो वर्ष पश्चात् अप्रैल 1951 में अखिल भारतीय आई.एन.ए. की शोध एवं सहायता संबंधी समिति तथा नयी दिल्ली में सरकार के सचिवालय में आई.एन.ए. की सलाहकार समिति की संयुक्त बैठक प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में हुई। इस अवसर पर प्रधानमंत्री को आई.एन.ए. के प्रतिनिधियों ने एक स्मरण पत्र दिया। यह स्मरण पत्र आई.एन.ए. के पंद्रह हजार अधिकारियों और सैनिकों के संबंध में था जो भारत में पूर्वी एशिया से 1946 के प्रथम चतुर्थांश में ही आ गये थे। उनका वेतन और भत्ता 1942 से जब सिंगापुर में अंग्रेजों की पराजय हुई थी तत्कालीन अंग्रेज सरकार

द्वारा अदा नहीं किया गया था। तब से अब तक सात हजार व्यक्तियों को कुछ रोजगार मिल गया था। अवशेष आठ हजार व्यक्ति निस्सहाय एवं दयनीय दशा में थे। यदि स्वतंत्र भारत की सेना में संपूर्ण आई.एन.ए. को विलय करने में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां थी तो वरिष्ठ एवं कनिष्ठ को छोड़कर जिनके कारण कठिनाई हो रही थी पांच हजार जवानों को सहानुभूति की दृष्टि से उनके मूल स्थान पर उन्हें पुन:स्थापित कर दिया जाये। यदि यह भी संभव न हो तो आई.एन.ए. को सीमा सुरक्षा पुलिस, सशस्त्र पुलिस, सामान्य पुलिस, गुप्तचर विभाग, सुरक्षा दल, चुंगी एवं आबकारी विभाग में नियुक्त किया जाए।

इस सम्मेलन में खिन्नता एवं प्रसन्नता का कुछ मिश्रित वातावरण आजाद हिंद फौज के भूतपूर्व मंत्री और नेताजी के छह विश्वस्त साथियों में से एक कर्नल गुलजारा सिंह की उपस्थिति से बना। कर्नल गुलजारा सिंह नेताजी के साथ उनकी अंतिम ज्ञात यात्रा और 'अज्ञात लक्ष्य में अभियान' पर सैगोन तक गए थे। भारत पहुंचने पर गुलजारा सिंह ने निश्चय किया कि वे भारतीय सेना में सैनिक जीवन ही व्यतीत करेंगे। अत: उन्होंने नए सिरे से लैफ्टिनेंट पद के लिये प्रार्थना पत्र भेजा और उनकी नियुक्ति हो गयी। स्वतंत्र भारत की सेना के लैफ्टिनेंट के रूप में उन्होंने प्रधानमंत्री के साथ इस सम्मेलन में भाग लिया।

सम्मेलन के दो दिन पश्चात् पंजाबराव देशमुख, एच.वी. कामथ, सोनाबेन, एवं अन्य लोकसभा के सदस्यों ने मेजर जनरल जे.के. भोंसले एवं अन्य लोगों के सम्मान में, जिन्होंने प्रधानमंत्री के साथ सम्मेलन में भाग लिया था, नयी दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब में एक भोज का आयोजन किया। इस भोज में भारत सरकार के मंत्री रफी अहमद किदवई, एन.वी. गाडगिल, सी.डी. देशमुख, हरे कृष्ण महताब और आर.आर. दिवाकर सहित साठ व्यक्ति आमंत्रित थे। अपने अभिनंदन का उत्तर देते हुए जनरल भोंसले ने कहा कि यह नेताजी सुभाषचंद्र बोस के गतिशील नेतृत्व का ही प्रभाव था कि पूर्वी एशिया स्थित तीस लाख भारतीयों ने अपना सर्वस्व मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए समर्पित किया। आई.एन.ए. की समस्या पहले पांच वर्ष तक अधर में लटकी रही। उन्होंने और उनके साथियों ने यह महसूस किया कि प्रधानमंत्री के आई.एन.ए. की सहायता समिति के अध्यक्ष बन जाने से आधी समस्या हल हो गयी और अर्द्ध समस्या का निवारण उपस्थित जनता, प्रेस और अन्य भारतीयों के सहयोग से हल होगा। उन्होंने जोर देकर बताया कि आई.एन.ए. के सैनिकों की दशा अति दयनीय है।

27. आज़ाद हिंद फ़ौज के प्रति न्याय

आई.एन.ए. के क्रियाशील एवं समर्पित अधिकारियों ने दिल्ली में आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन का संगठन किया, जिसका एकमात्र उद्देश्य नेताजी की स्मृति और उनके आदर्शों को जीवित रखना था। साथ ही एसोसिएशन को अंग्रेजों के समय में आई.एन.ए. पर लगे अर्थहीन कलंक को मिटाकर उन्हें उचित न्याय दिलाना एंव उनके अवशेष वेतन और भत्तों का भुगतान कराने का प्रयास भी करना था। मई 1967 में इस एसोसिएशन ने लोक सभा सदस्यों के नाम एक पुस्तिका के रूप में अपील जारी की जिसका शीर्षक था— 'आज़ाद हिंद फ़ौज की वर्तमान स्थिति के संबंध में तथ्य'। इस पुस्तिका में आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन की ओर से वे तथ्य और आंकड़े दिए गए हैं जिनसे यह पता चलता था कि 1947 के बाद से स्वतंत्र भारत की सरकार के हाथों आई.एन.ए. की क्या स्थिति रही और मुक्ति सेना के भूतपूर्व सदस्यों के प्रति पूरा न्याय उपलब्ध कराने के लिए अभी क्या करना शेष है।

एसोसिएशन के अनुसार आई.एन.ए. को अब तक जो लाभ हुए वे थे—अप्रैल 1948 में स्वतंत्र भारत की सरकार ने घोषणा की कि आई.एन.ए. के सदस्यों के विरुद्ध कोई कलंक नहीं है। चार सौ से लेकर आठ सौ रुपये तक की संकलित धनराशि एवं कुछ अन्य धनराशि अनुदान के रूप में दी गयी।

आई.एन.ए. के अधिकारियों को 1950 में नए सिरे से कमीशन देकर पुनः नियुक्त किया गया। अन्य सैनिकों को कहा गया कि वे नीचे के पद पर भर्ती हों।

सरकार ने 1961 में आई.एन.ए. आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन घोषित किया और उसके सब सदस्यों को राजनीतिक पीड़ित माना।

आर्थिक सहायता के रूप में 1963 में तीस लाख रुपये की राशि स्वीकृत दी गयी।

परंतु सबसे महत्वपूर्ण मांग ब्रिटिश सरकार द्वारा आई.एन.ए. के सदस्यों के दंड स्वरूप रोके गए वेतन और भत्ते एवं संपूर्ण जीवन में कष्ट द्वारा अर्जित बचत संबंधी थी जिसे प्राप्त करने से सरकार ने उन्हें वंचित कर दिया था। यह जब्त की गयी धनराशि 1946 में दो करोड़ रुपये थी और 1967 तक चक्रवृद्धि ब्याज लगाकर कम-से-कम पांच करोड़ रुपये हो गयी थी। पांच करोड़ के स्थान पर सरकार ने 68 लाख रुपये वितरित किया था।

आज़ाद हिंद फौज एसोसिएशन ने अपने अवशेष वेतन और भत्तों को प्राप्त करने के लिए आंदोलन तीव्र किया और वे सरकारी अधिकारियों से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए कई बार मिले।

अंत में दिल्ली में उपस्थित आई.एन.ए. के कुछ अधिकारियों के सोलह वर्ष तक सतत प्रयास करने से फल प्राप्त हुआ। इस आंदोलन को चलाने वालों में अथक परिश्रम करने वाले एसोसिएशन के महासचिव कप्तान एल.सी. तलवार थे।

आजाद हिंद फौज एसोसियेशन ने 28 नवंबर 1970 को आई.एन.ए. के सदस्यों के नाम एक परिपत्र लिखा जिसके द्वारा उन्हें बताया कि सरकार ने अंत में अवशेष वेतन एवं भत्तों के भुगतान का निर्णय ले लिया था। यह निर्णय आई.एन.ए. के लिए संतोषप्रद था यद्यपि इसमें विभिन्न स्तर के अधिकारियों और सैनिकों को प्रभावित करने वाली पेचीदा परिकलन संबंधी अनेक कठिनाइयां सन्निहित थीं। एसोसिएशन ने यह भी दावा किया कि यदि 1954 से आंदोलन न किया गया होता तो जब्त किए अवशेष वेतन और भत्ते देने की स्वीकृति प्राप्त नहीं होती और यह धन सदैव के लिए समाप्त हो जाता।

28. क्या नेताजी जीवित हैं?

क्या नेताजी जीवित हैं?

पूर्वी एशिया से 1945 मे नेताजी का अदृश्य हो जाना अभी तक भारत में विवाद का प्रश्न बना हुआ है।

अप्रैल 1956 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की सरकार ने तीन व्यक्तियों की एक सरकारी समिति बनायी जिसके सदस्य मेजर जनरल शाहनवाज खां, सुभाष चंद्र बोस के अग्रज सुरेश चंद्र बोस और अंडमान निकोबार द्वीपों के आयुक्त एस.एन. मयैत्रा आइ.सी.एस. थे। इस समिति का कार्य उन परिस्थितियों को ज्ञात करना था जिनमें 16 अगस्त 1945 के लगभग नेताजी ने बैंकाक छोड़ा और वायुयान के दुर्घटना ग्रस्त हो जाने के कारण उनकी तथाकथित मृत्यु तथा इस घटना से संबंधित अन्य जानकारी प्राप्त करके सरकार को रिपोर्ट देना था।

समिति ने दिल्ली, कलकत्ता, बैंकाक, सैगोन और टोकियो में 67 साक्षियों से पूछताछ की। जनरल शाहनवाज और एस.एन. मयैत्रा इस निर्णय पर पहुंचे कि "वायुयान दुर्घटना में नेताजी की मृत्यु हुई और रेनकोजी मंदिर (टोकियो) में रखे हुए अस्थि अवशेष उन्हीं के अस्थि अवशेष हैं।" सुरेश चंद्र बोस ने अपने दोनों साथियों से खुले आम असहमति प्रकट की और कहा कि समिति द्वारा एकत्रित साक्ष्य से "उनके द्वारा लिया गया निर्णय प्रमाणित नहीं होता।" सुरेश चंद्र बोस ही नहीं उनके परिवार के अन्य सदस्यों को भी आज तक यह विश्वास नहीं हुआ कि नेताजी की मृत्यु 18 अगस्त 1945 को फारमोसा में वायुयान दुर्घटना में हुई और टोकियो में रखे हुए अस्थि अवशेष नेताजी के ही अस्थि अवशेष हैं। नेताजी के परिवार की भावनाओं का आदर करते हुए भारत सरकार ने शाहनवाज और मयैत्रा की इस सिफारिश को नहीं माना कि "अस्थि अवशेष समुचित सम्मान सहित भारत लाए जाएं और किसी उपयुक्त स्थान पर उनका स्मारक बनाया जाए।"

ग्यारह वर्ष पश्चात् दिसंबर 1967 में लोक सभा के 350 सदस्यों ने भारत के राष्ट्रपति को एक स्मरण-पत्र दिया जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त इस बात पर भी जोर दिया गया कि "जापान तथा तैवान (जहां वायुयान दुर्घटना ग्रस्त हुआ) की सरकारों के सहयोग से नेताजी के संबंध में पुनः तथ्यों का पता लगाया जाए। नेताजी

के विषय में जो रहस्यमय विचार बने हुए हैं उनके निवारण का एकमात्र उपाय पुन: तथ्यों को ज्ञात करना ही है।"

मई 1968 में राष्ट्रपति भवन से नेताजी सें संबंधित राष्ट्रीय समिति के संयोजक प्रो. समर गुहा, संसद सदस्य के नाम एक संदेश भेजा गया। अगले माह प्रो. गुहा ने संवाददाता सम्मेलन में कहा कि नेताजी के संबंध में रहस्य निवारण करने के लिए पुन: जांच करने की आवश्यकता है और यह राष्ट्रीय उतरदायित्व है जिसे अनिश्चित काल तक अनिर्णीत नहीं छोड़ा जा सकता।

आजाद हिंद फौज एसोसियेएशन ने सितंबर 1968 में एक मुद्रित पत्रिका प्रसारित की जिसमें राष्ट्रपति के नाम लोक सभा के सदस्यों के स्मरण-पत्र को उद्धृत किया गया और तत्संबंधी अन्य पत्र व्यवहार का उल्लेख भी किया गया। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने नेताजी के अदृश्य होने संबंधी तथ्यों की पुन: जांच की मांग को दोहराया।

भारत सरकार ने 11 जुलाई 1970 को एक विज्ञप्ति द्वारा "श्री जी.डी. खोसला, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश पंजाब हाई कोर्ट की अध्यक्षता में एक सदस्यीय जांच आयोग नियुक्त किया।

इस विज्ञप्ति में कहा गया था कि "आयोग उन सभी तथ्यों की जांच करेगा जो नेताजी सुभाष चंद्र बोस के 1945 में अदृश्य होने से संबंधित हैं और तत्पश्चात् तत्संबंधी घटी घटनाओं की जांच करके केंद्रीय सरकार को रिपोर्ट देगा।"

आयोग ने दिल्ली, कलकता, बंबई और जापान में अनेक ही साक्षियों की गवाही अंकित की।

29. नेताजी का विवाह

क्योंकि नेताजी अपने 38 करोड़ देशवासियों को मुक्त कराने हेतु जीवन-मृत्यु के क्रांतिकारी संघर्ष में व्यस्त थे अत: उन्होंने जानबूझकर अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को बहुत दूर रखा। उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष के संदर्भ में जिसमें वे अत्यधिक संलग्न थे, अपनी निजी समस्याओं को महत्व नहीं दिया। पूर्वी एशिया में किसी व्यक्ति ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से भारत में अपने परिवार के किसी सदस्य के संबंध में कोई विचार प्रकट करते नहीं सुना। यहां तक कि उन्होंने अपनी श्रद्धेय माताजी अथवा प्रियतम अग्रज शरत चंद्र बोस के विषय में भी कभी कुछ नहीं कहा। अपने परिवार के अधिकांश व्यक्तियों में उनकी अत्यंत श्रद्धा थी। उनका सिद्धान्त था कि उनके निजी मामले व्यक्तिगत थे अत: उन्होंने इनको राष्ट्रीय विषयों के बीच जिनके लिए वे अपना पूरा समय और शक्ति लगा रहे थे, कभी नहीं आने दिया। यही कारण था कि जब पूर्वी एशिया में विदेशी संवाददाताओं ने उनसे उनके विवाह संबंधी बात की तो उन्होंने उनके प्रश्नों को टाल दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि उनके विवाह का विषय पूर्णरूप से व्यक्तिगत था और इस विषय की ओर किसी व्यक्ति अथवा जनता का ध्यान उस समय तक नहीं जाना चाहिए जब तक वे देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में लगे थे।

पूर्वी एशिया में 1943 से 1945 तक जो व्यक्ति उनके अति निकट रहे वे भी नहीं जानते थे कि नेताजी विवाहित थे अथवा नहीं। पूर्वी एशिया में युद्ध समाप्त होने के पश्चात् जब वे अदृश्य हुए तो भारत के समाचारपत्रों में उनके विवाह संबंधी अनेक बातें कही जाने लगीं। तब अप्रैल 1951 में आई.एन.ए. की सलाहकार समिति के अध्यक्ष एवं सदस्यों ने समाचारपत्रों को बयान दिया कि उन्होंने इस संबंध में कुछ प्रत्यक्ष रूप से जानबूझकर नहीं कहा था क्योंकि यह नेताजी का व्यक्तिगत मामला था। परंतु इस विषय में एक विवाद खड़ा हो जाने के कारण उन्होंने उद्घाटित किया कि 1942 में नेताजी ने अपने जर्मन निवास के समय मिस एमली शैंकल, जो यूरोप में कई वर्ष तक उनकी निकट की सहयोगी और सहकार्यकर्त्ता रही थी, से विवाह कर लिया था। "हम जानते हैं कि जब नेताजी ने विवाह के एक वर्ष उपरांत दक्षिणी पूर्वी एशिया के भारतीयों को स्वतंत्रता युद्ध में नेतृत्व प्रदान करने

के लिए जर्मनी से पूर्वी एशिया की संकटपूर्ण यात्रा पर प्रस्थान किया तो उनकी पत्नी ने उन्हें उसी रीति से विदाई दी जिस रीति से प्राचीनकाल में युद्ध पर जाते समय वीरों को उनकी पत्नियां विदाई देती थीं। इसके लिए वे हमारे सम्मान की पात्र हैं। उस समय उनकी गोद में दो मास का शिशु भी था।"

नेताजी की पत्नी अब वियना में रहती हैं और नेताजी की पुत्री अनिता जो 1961 में भारत आयीं थीं अब विवाहित हैं और अमेरिका में रहती हैं।

30. आज़ाद हिंद फ़ौज अमर है

आई.एन.ए. आज भी लाखों भारतीयों के हृदय में अमर है। 1946 से संपूर्ण देश में नेताजी का जन्म दिवस 23 जनवरी को मनाया जाता है। यह स्वाभाविक ही है कि उनकी जन्म-भूमि बंगाल प्रदेश उनके जन्म दिवस को अत्यंत उत्साहवर्धक तैयारियों के साथ मनाने में अग्रणी है। 23 जनवरी को बंगाल में कितने ही वर्षों से अवकाश रहता है और जनता नेताजी की कांसे की मूर्ति पर फूलमाला अर्पित करने के लिए कलकत्ता में एकत्र होती है। समस्त देश में 1943 से 1945 तक हुए स्वतंत्रता युद्ध में आई.एन.ए. के बलिदान एवं त्याग की स्मृति में सभाएं होती हैं।

दिल्ली आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन, नेताजी और आई.एन.ए. की स्मृति को जीवित रखने के लिए नेताजी के जन्म दिन को प्रतिवर्ष अधिक विस्तृत तैयारी एवं प्रभावपूर्ण ढंग से मनाती है। भारत की राजधानी कम-से-कम प्रतिवर्ष एक बार मुक्ति सेना और उस व्यक्ति को जिसका युद्ध घोष "चलो दिल्ली" था और जिसका लक्ष्य वाइसराय भवन पर तिरंगा फहराना एवं लालकिले में विजय परेड करना था, को स्मरण कर लेती है। व्यक्ति जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं परंतु इतिहास अमर है। प्रथम जवाहरलाल नेहरू, उनके बाद लालबहादुर शास्त्री और फिर इंदिरा गांधी ने क्रमश: स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री के रूप में लालकिले के प्राचीर पर प्रतिवर्ष 15 अगस्त को प्रात:काल नेताजी और आई.एन.ए. सहित भारत की स्वतंत्रता के लिए लाखों नर-नारियों के बलिदान का जनता को स्मरण दिलाने के उद्देश्य से झंडा फहराया है।

दिल्ली आज़ाद हिंद फ़ौज ऐसोसिएशन 23 जनवरी को सवेरे से शाम तक राजधानी के नागरिकों को एकत्र करके उन्हें स्मरण दिलाती है कि नेताजी और आई.एन.ए. ने किस प्रकार भारत के राष्ट्रीय संघर्ष के अंधकारपूर्ण दिनों में स्वतंत्रता की ज्योति को प्रज्वलित रखा।

नेताजी के जन्म दिवस उत्सव को मनाने में आकाशवाणी और समाचार प्रसारण के अन्य माध्यम भी अपना योगदान देते हैं।

कलकत्ता में लाला लाजपतराय रोड पर स्थित नेताजी भवन, जो पहले उनके

परिवार के पूर्वजों का निवास-स्थान था, नेताजी के आदर्शों को प्रसारित करने के लिए राष्ट्र को समर्पित कर दिया गया है। स्वयं उच्च कोटि के राष्ट्रीय नेता और नेताजी के लिए प्रेरणा के स्रोत उनके अग्रज शरत चंद्र बोस ने बीस वर्ष पूर्व इस भवन की नींव रखी थी। यह भवन अब राष्ट्रीय मंदिर बन गया है। इसमें नेताजी शोध संस्थान और नेताजी संग्रहालय नामक संस्थाएं चल रही हैं। शोध संस्थान के सामने राष्ट्र सेवा की एक उच्चकोटि की योजना है परन्तु धनाभाव के कारण उनके कार्यान्वयन में कठिनाई आ रही है। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी एवं अन्य केन्द्रीय मंत्रियों ने इस संग्रहालय को देखकर इसकी व्यवस्था की प्रशंसा की है। नेताजी के भतीजे डा. शिशिर कुमार बोस जिन्होंने 17 जनवरी 1941 की रात्रि में उनके कलकत्ता स्थित घर से पलायन करने में सहायता दी थी, इस भवन के कार्य की व्यवस्था उत्साह सहित दिन-रात परिश्रम से करते हैं। उनका लक्ष्य भवन को भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए देशभक्ति की शिक्षा का राष्ट्रीय केंद्र बनाना है। अब भी नेताजी शोध संस्थान में संसार के बहुत से भागों से विद्वान आकर नेताजी के जीवन एवं उनकी उपलब्धियों के अनेक रूपों सहित आई.एन.ए. के भारत के स्वतंत्रता संघर्ष पर प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

जब 19 मार्च 1967 में जापान के लै. जनरल फ्यूजी वारा ने एक बहुत बड़े जन-समूह की उपस्थिति में नेताजी संग्रहालय को वह तलवार भेंट की जो उन्हें 1943 में पूर्व एशिया में जापानियों से भेंट में प्राप्त हुई थी तो भवन में एक ऐतिहासिक एवं पावन वातावरण उत्पन्न हो गया। जनरल फ्यूजी वारा 1942 में मलाया में उत्तरी जापानी सेना में मेजर थे और उन्होंने इस वर्ष जनरल मोहन सिंह को प्रथम आज़ाद हिंद फ़ौज के निर्माण करने में सहायता दी थी। लगभग तीस वर्ष पूर्व उस दिन से फ्यूजी वारा निरंतर भारत की स्वतंत्रता, उसकी प्रसन्नता एवं समृद्धि में स्थायी तथा सक्रिय रुचि लेते रहे हैं। अन्य राष्ट्रों के उत्थान में ऐसी रुचि एक अनुपम उदाहरण हैं।

शरत चंद्र बोस के पुत्र और नेताजी के भतीजे अमिय नाथ बोस ने आज़ाद हिंद संघ नामक एक राष्ट्रीय पार्टी नेताजी के आदर्शों का प्रसार करने के उद्देश्य से 1968 में बनायी।

नेताजी संग्रहालय देखने के लिए सब प्रदेशों से समाज के प्रत्येक वर्ग के अनेक व्यक्ति सतत आते रहते हैं। संस्थान ने नेताजी और आई.एन.ए. के लगभग दो सौ चित्रों को बड़ा कराकर बंबई, दिल्ली, अंडमान में प्रदर्शनियों का आयोजन करके प्रदर्शित किया। सब स्थानों पर अनेक व्यक्ति बड़ी संख्या में इन प्रदर्शनियों को देखने आए।

दिल्ली में नेताजी का उपयुक्त स्मारक 'नेताजी भवन' बनाने का प्रस्ताव विचाराधीन है। उनके 75वें जन्म दिवस पर प्रकाशित स्मारिका 'नेताजी और आज का भारत' के संपादक सुर्दशन के. सावरा कहते हैं कि इस स्मारक का कार्य "युवकों को भविष्य के लिए नेतृत्व की शिक्षा देना और देश के लिए ऐसे कर्तव्यनिष्ठ नागरिक उत्पन्न करना होगा जो सेवा भाव एवं त्याग के उच्च आदर्शों से युक्त हों और नेताजी के कार्य को आगे बढ़ा सकें।"

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा निर्मित एक अखिल भारतीय आई.एन.ए. समिति दिल्ली मुख्यालय पर कार्यरत है। इस समिति के अध्यक्ष सदैव भारत के प्रधान मंत्री रहे हैं। कर्नल जगदेव सिंह (आई.एन.ए.) इसके महासचिव हैं।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय महत्व की एक प्रमुख घटना 21 अक्तूबर 1968 को आज़ाद हिंद की अस्थायी सरकार की पच्चीसवीं वर्षगांठ मनाने की हुई। यह अस्थायी सरकार नेताजी ने सिंगापुर में 21 अक्तूबर 1943 में बनायी थी।

मुख्य उत्सव मणिपुर के दक्षिण में 27 मील दूर मोरांग में मनाया गया क्योंकि यहीं पर 14 अप्रैल 1944 को आई.एन.ए. के कर्नल एस.ए. मलिक ने भारतभूमि पर प्रथम बार राष्ट्रीय तिरंगा लहराकर इस स्थान को पवित्र किया था। कर्नल मलिक ने ढाई मास तक आज़ाद हिंद सरकार की ओर से मोरांग को मुख्यालय बनाकर इस प्रदेश पर शासन किया था। प्रथम 'राष्ट्रीय मंदिर' मोरांग आई.एन.ए. के शहीदों के स्मारक का रूप लेता जा रहा है। तत्कालीन राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष उ.न. ढेबर ने इस स्मारक की नींव 1955 में रखी थी। जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री के सुझाव से स्मारक पर पांच से सात लाख के बीच रु. व्यय होने थे। अत: स्मारक संबंधी पूर्व योजना परिवर्तित कर दी गयी। तत्कालीन प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी और मैसूर के तत्कालीन मुख्यमंत्री निजलिंगप्पा ने एक-एक लाख रुपये देना स्वीकार किया था। तत्कालीन मणिपुर के मुख्यमंत्री, आई.एन.ए. के कोरेंग सिंह, जो इस स्मारक के अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष भी थे, एवं शीलभद्र एम.पी. जो स्मारक के उपाध्यक्ष थे, के अनुसार, महाराष्ट्र, आंध्र, असम, जम्मू और कश्मीर, उड़ीसा, त्रिपुरा और गुजरात के मुख्यमंत्रियों ने भी धन की स्वीकृति दी थी।

मोरांग में 21 अक्तूबर 1968 को अस्थायी सरकार के निर्माण की रजत जयंती समारोह में सम्मिलित होने के लिए केन्द्रीय सरकार के छह मंत्री वाई.बी. चव्हाण, डा. त्रिगुन सेन. डा. रामसुभग सिंह, के.के. शाह, श्रीमती फूल रेनु गुहा और प्रो. शेरसिंह गए थे।

प्रथम आई.एन.ए. के प्रसिद्ध संस्थापक जनरल मोहनसिंह को इस अवसर पर

विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। मनीलाल दोशी ने, जो अस्थायी सरकार के सदस्य थे और 21 अक्तूबर 1943 को सिंगापुर में नेताजी की ऐतिहासिक घोषणा के समय वहां उपस्थित थे, 21 अक्तूबर 1968 को मोरांग उत्सव में घोषणा पढ़ी। वे अपने आपको इस बात पर अत्यंत भाग्यशाली एवं गौरवपूर्ण अनुभव कर रहे थे कि उन्हें 25 वर्ष पूर्व की महत्वपूर्ण घोषणा उस दिन पढ़ने के लिए बुलाया गया था।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने सितंबर 1969 को मोरांग स्मारक के संग्रहालय विभाग का उद्‌घाटन किया।

भारतीय मुक्ति संघर्ष और नेताजी एवं आई.एन.ए. के इस मुक्ति संघर्ष में योगदान की स्मृति को जाग्रत रखने के लिए मोरांग में नेताजी की कांसे की मूर्ति, एक बड़ा हाल, पुस्तकालय एवं संग्रहालय स्थापित करने की वृहद योजना है।

आज़ाद हिंज फ़ौज एसोसिएशन ने रजत जयंती समारोह राष्ट्रीय स्तर पर मनाने के लिए एक महत्वपूर्ण स्मारिका निकाली जिसमें सब पार्टियों के राष्ट्रीय नेताओं के प्रेरक संदेश और नेताजी एवं आई.एन.ए. संबंधी अनेक रोचक लेख सम्मिलित किए गए थे।

उनके कुछ मुख्य अंश इस प्रकार हैं:—

"आज़ाद हिंद सरकार द्वारा अंडमान में भारत भूमि पर तिरंगा लहराने का कार्य उस घटना का प्रतीकात्मक पूर्व रूप था जो 15 अगस्त 1947 को दिल्ली के लाल किले में तिरंगा लहराते समय घटी।"—*डा. जाकिर हुसेन, राष्ट्रपति*।

सुभाष चंद्र बोस के भारत की स्वतंत्रता में योगदान को सभी अच्छी प्रकार जानते है। वह हमारे इतिहास का एक उतम भाग है।"— *डा. राधाकृष्णन, भूतपूर्व उप राष्ट्रपति*।

"नवीन भारत के निर्माताओं में सुभाषचंद्र बोस का प्रमुख स्थान है, उनकी मित्रता और सान्निध्य प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है।"—*वी.वी. गिरी, उप-राष्ट्रपति*।

"नेताजी सुभाषचंद्र बोस क्रियाशीलता एवं देशभक्ति के जाज्वल्यमान प्रतीक हैं। उनकी जीवनी और संदेश आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहेंगे। 25 वर्ष पूर्व उन्होंने आज़ाद हिंद सरकार बनायी और उसका नेतृत्व किया। यह हमारे इतिहास की एक प्रमुख घटना है।" —*श्रीमती इंदिरा गांधी, भूतपूर्व प्रधान मंत्री*।

"मैं इस अवसर पर आई.एन.ए. के वीरों को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।"—*ई.एम.एस. नंबूद्रीपाद, मुख्य मंत्री, केरल*।

"इस अवसर पर मैं समस्त वृद्ध, युवक, पुरुष, स्त्री, लड़के, लड़कियों से एक विशेष निवेदन करता हूं कि उन्हें भारत के इस महान पुत्र का अनुसरण करके मातृभूमि

की सेवा के प्रति अपना कर्तव्य समझना चाहिए। हम इस देश के सच्चे, देशभक्त पुत्र और पुत्री बनें जिससे कि कष्टों द्वारा प्राप्त की हुई स्वतंत्रता स्थिर रहे और हम जनतात्रिक ढंग से देश में स्वतंत्र नागरिक के रूप में रह सकें।"— *जनरल के.एक करियप्पा, भूतपूर्व कमांडर-इन चीफ, भारतीय सेना*।

आई.एन.ए. के 1945 में भारत आगमन के तुरंत बाद महात्मा गांधी ने कहा, "यद्यपि आई.एन.ए. इस समय अपने लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रही परंतु फिर भी उनकी अनेक उपलब्धियां है जिनके लिए वे गर्व कर सकते हैं उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि उनके एक स्थान पर एक झंडे के नीचे एकत्र होने की है। भारत की सभी जातियों एवं धर्मों के व्यक्ति धार्मिक एवं जातीय भेदभाव भूलकर एक हो गये और उनमें संगठित होने की भावना जाग्रत हुई, यह एक ऐसा उदारण है जिसका अनुसरण हम सबको करना चाहिए।"

दिल्ली के परेड ग्राउंड में 23 जनवरी 1970 को नेताजी के 74वें जन्म दिवस उत्सव का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने अपने भाषण में कहा, "मुझे नेताजी के मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे एक बहुत अच्छे साथी एवं स्वतंत्रता संग्राम के नेता थे। उनके लिए सर्वोत्तम श्रद्धांजलि पारस्परिक एकता और देश को शक्तिशाली बनाकर राष्ट्रों में देश का उचित स्थान प्राप्त कराना है।"

आई.एन.ए. के कुछ अविस्मरणीय दृश्य तमिलनाडु में 11,12 अक्तूबर 1969 को छोटे स्तर पर देखने को मिले।

तमिलनाडु की आई.एन.ए. लीग द्वारा आयोजित मदुराई की एक रैली में आई.एन.ए. के दो हजार भूतपूर्व सैनिक उपस्थित हुए जिनमें सौ झांसी की रानी रेजिमेंट की भूतपूर्व सदस्यायें भी थीं। उन्होंने मार्च पास्ट किया। जिसकी सलामी लाल किले के मैदान में प्रसिद्ध सैनानी जी.एस. ढिल्लन ने ली। इन सैनिकों में लगभग पंद्रह सैनिक उन्हीं वस्त्रों को पहने थे जो उन्होंने 25 वर्ष पूर्व भारत के स्वतंत्रता युद्ध में पहने थे। इन वस्त्रों को वे 25 वर्ष से संजोए हुए रखे थे। 25 वर्ष पश्चात् यह पुनर्मिलन अनुपम था। रैली में दो दिन तक भावात्मक हर्ष का वातावरण उपस्थित रहा।

31. नेताजी-एक सिंहावलोकन

सुभाष चद्रं बोस का जीवन किशोर अवस्था से ही आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित रहा। संत रामकृष्ण परमहंस और उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी स्वामी विवेकानंद ने उनके जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। 15 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने उनकी जीवनी और उपदेशों का अध्ययन कर लिया था और उस भावोन्मुख आयु में उन पर इन दोनों आध्यात्मिक मनीषियों की गहरी छाप अंकित हुई।

पांच वर्ष की आयु में ही सुभाष अन्य बच्चों की भांति खेल में कम रुचि लेते थें और लज्जालु तथा एकांतवासी थे। किशोर अवस्था में उनकी रुचि समाज सेवा कार्यो में अधिक रहती थी और वे ग्रामों में भस्म रमाए हुए साधुओं से बड़ी श्रद्धा से मिलते थे। राजनीति ने उन्हें कलकत्ता में कालेज स्तर के अध्ययन के समय तक भी विशेष आकर्षित नहीं किया था और नवयुवकों के आतंकवादी कार्यक्रमों में उनकी रुचि और भी कम थी। वे शिक्षा के माध्यम से रचनात्मक समाज कार्यों में सक्रिय रुचि लेते थे। इस हेतु उन्होंने समान रुचि रखने वाले लड़कों को एकत्र करके योजना तैयार की थी।

रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद के अतिरिक्त वे चितरंजनदास से प्रभावित हुए जो अपनी उच्च कोटि की वकालत छोड़कर देश के सेवा कार्यों में लग गए थे। उन्हीं के महान त्याग एवं नितांत नि:स्वार्थ सेवा ने सुभाष को अपनी ओर आकर्षित किया और उन्होंने जीवन-भर चितरंजनदास का अनुयायी रहने का निश्चय किया।

तेईस वर्ष की आयु में निस्संदेह सुभाष तूफानी राजनीति में आ गए, परंतु उनकी अंतरात्मा में अध्ययन के प्रति लगन कभी कम नहीं हुई। उनको भगवद्गीता के अध्ययन से शांति और शक्ति प्राप्त होती थी। इसे वे प्रत्येक रात्रि में सोने से पहले पढ़ते थे और दिन में प्रत्येक क्षण गीता की शिक्षा के अनुसार कार्य करने का प्रयास करते थे। यद्यपि राजनीति के कारण वे सदैव जन-समूह के बीच ही रहते थे परंतु उनकी आत्मा एकांत में ईश्वर के ध्यान में मग्न रहने की अभिलाषी रहती थी। जनता के मंच पर वे लंबा भाषण देते थे परंतु मंच से पृथक होते ही वे शीघ्र एकांत चाहते थे और किसी से बातचीत करना पसंद नहीं करते थे। पूर्वी एशिया में वे यदि भोजन के पश्चात खुले में विश्राम करते और उसके पास उनका बुलाया हुआ कोई व्यक्ति

उनके कहने पर आकर बैठ जाता तो भी वे पूरे घंटे में कुछ ही शब्द बोलते थे। वे मनन के लिए किसी के सान्निध्य की अपेक्षा शांति अधिक चाहते थे। शांति के वे ही क्षण ऐसे होते थे जिनमें वे अपनी आत्मिक शक्ति को बलवती करके सांसारिक समस्याओं से जूझने के लिए शक्ति प्राप्त करते थे। उनका 24 घंटों में अत्यधिक महत्व का समय वह होता था जब वे रात्रि में प्रातः दो या तीन बजे शयन से पूर्व गीता पढ़ते थे। जब वे सोकर उठते तो उनके मुख पर शक्ति और पवित्रता की आभा दिखायी देती थी। वे सोते समय अपने दिन-भर के कार्यों की आध्यात्मिक समीक्षा करते थे और यह आभा इसी समीक्षा का प्रतिफल होती थी।

सिंगापुर में सोने से पूर्व रामकृष्ण परमहंस आश्रम के मुख्य संन्यासी को अपनी गाड़ी भेजकर घर बुलाना अथवा शरीर पर केवल एक धोती पहनकर आश्रम जाना और वहां मनन करना उनकी दैनिक चर्या का अंग था। मनन के पश्चात ही वे अगले दिन के कार्यों में व्यस्त होने से पूर्व कुछ समय के लिए सोते थे। उनके क्रांतिकारी कार्यक्रम और आध्यात्मिक मनन इस प्रकार साथ-साथ चलते कि एक दूसरे से लिए कभी बाधक न होते। यदि इनमें कोई विरोध था तो वह ऊपरी था वास्तविक नहीं। वास्तव में वे कर्मयोगी थे— ऐसा योगी जो गीता की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप दे रहा हो। बाहरी दुनिया के लिए वे एक राजनीतिक नेता थे किंतु कर्मयोग ने उन्हें ईश्वर में विश्वास रखकर निष्काम कर्म की शिक्षा दी थी।

उनके गांधीजी के साथ राजनीतिक मतभेद बहुत अधिक थे और इस संबंध में वे उनसे एकमत नहीं हो सकते थे परंतु जहां तक महात्माजी के सम्मान का प्रश्न है वे इस विषय में किसी से पीछे नहीं थे। जब वे रंगून रेडियो से बोले तो उन्होंने गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने में भूल नहीं की और उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित करते हुए आशीर्वाद की प्रार्थना की। जब युद्ध धुरी शक्तियों की पराजय के साथ समाप्त हुआ तो गांधीजी ने मित्र राष्ट्रों को विजयगर्व से उन्मत्त न होने की चेतावनी दी। सुभाष ने अपनी सरकार के साथियों से आत्मीय बातचीत करते हुए कहा, "भारतवर्ष में गांधी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो अंग्रेजों को विजय के दूसरे दिन ही ऐसा कहने का साहस कर सके।"

यदि उन्हें गांधीजी का विरोध करना होता तो वे बहुत खेद के साथ एवं दुखी मन से ऐसा करते थे। वे अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे और उनमें उनका अटूट विश्वास था। यदि इसके लिए उन्हें कुछ त्याग भी करना पड़े तो उसके लिए भी वे तैयार रहते थे। उन्होंने अपने विश्वासों का मूल्य चुकाया और बिना विचलित हुए कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात तीन वर्ष तक किसी पद पर निर्वाचन हेतु प्रार्थी न होने का दंड भी सहन किया।

उन्होंने अपनी आदतों में राजाध्यक्ष, अस्थायी सरकार का प्रधानमंत्री और आज़ाद हिंद फ़ौज का सर्वोच्च कमांडर होने पर भी कोई परिवर्तन नहीं किया।उनकी जीवन-यापन की आदतें पराकाष्ठा की सीमा तक साधारण थीं। वे स्वयं उसी राशन का भोजन करते थे जो सैनिकों को दिया जाता था। सैनिक भी यह जानते थे कि वे वही भोजन कर रहे थे जो उनके कमांडर खाते थे।उनके भोजन में तभी परिवर्तन होता था जब उन्हें किसी उच्च श्रेणी के अभ्यागत का सम्मान करना होता था।

उनका विश्वास था कि भारत से अंग्रेजी शासन अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से ही हटाया जा सकता था और सशस्त्र शक्ति का संगठन भारत के बाहर ही हो सकता था। इसलिए उन्होंने स्वयं 1941 में व्यक्तिगत संकट एवं अनेक कष्ट सहते हुए देश-निर्वासन लिया और अंग्रेजों के इस आक्षेप को भी जानबूझ कर सहन किया कि वे धुरी शक्तियों के हाथ की 'कठपुतली' थे। देशभक्तों में उच्च कोटि का देशभक्त होते हुए भी उन्हें शत्रु के युद्धकालीन प्रचार में 'संतरी' कहा गया। वे इस प्रकार से तनिक भी विचलित नहीं हुए क्योंकि वे अपने विचारों में इतने दृढ़ थे कि अपशब्द एवं अपमान भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते थे। वे जानते थे कि उन्हें किस वस्तु की आवश्यकता थी। उसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय किया था। वह थी देश को स्वतंत्र करने हेतु भारत के बाहर से सशस्त्र सहायता।

नेताजी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता के संघर्ष में अपने योगदान की कभी अतिशयोक्ति नहीं की। स्वतंत्रता संघर्ष उनके जन्म के 150 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था और अगस्त 1945 तक, जब वे सैगोन में अपनी अंतिम ज्ञात यात्रा के लिए बोंबर वायुयान में सवार हुए, समाप्त नहीं हुआ था।अत: अपने जन्म से पूर्व डेढ़ शताब्दी के समय में उत्पन्न उन क्रांतिकारियों के बलिदान का कथन करते हुए वे नहीं थकते थे जो फांसी के तख्ते पर झूल गए थे। वे बार-बार आई.एन.ए. और पूर्वी एशिया में भारतीय नागरिकों को स्मरण दिलाते थे कि 1918 से 1942 में 'भारत छोड़ो' अंतिम आंदोलन तक भारत में गांधीजी के नेतृत्व में विदेशियों से प्रत्येक दशा में असमान निशस्त्र भारतवासी उनसे लड़ते रहे थे। नेताजी आई.एन.ए. और पूर्वी एशिया में भारतीयों से बार-बार स्पष्ट कहते थे: "स्मरण रखो कि हमने भारत में उन निशस्त्र पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की सहायता के लिए जो अंग्रेजी की संगीनों का सामना कर रहे हैं यह द्वितीय मोर्चा खोला है। तुम भाग्यशाली हो कि तुम उन संगीनों से दूर हो। तुम्हारे पास अपनी संगीनें हैं जिनसे तुम युद्धभूमि में लड़ सकते हो। यदि तुम सब तीस लाख भारतीय अपना सर्वस्व यहां तक कि अपना जीवन भी अड़तीस करोड़ देशवासियों की मुक्ति के लिए दे दो तो वह भी कम है। तुम्हारे जीवन में यह स्वर्णिम अवसर है। इसे

न जाने दो। भविष्य में आने वाली पीढ़ियां यह न कहें कि तुम अपनी मातृभूमि के इतिहास में इस कठिन समय पर काम न आए।"

मूल रूप में वे इस दृष्टि से मानव जाति के प्रेमी थे कि वे भारत के अड़तीस करोड़ देशवाशियों को मुक्ति दिलाने के प्रयास में अपना जीवन उत्सर्ग करने को तैयार थे। यदि किसी से कोई त्रुटि हो जाती तो उसके साथ वे दयालुता का व्यवहार करते थे। उनका हृदय अस्पताल में घायलों को देखकर विह्वल हो जाता था परंतु वे अपने देश के करोड़ों देशवाशियों से यह कहने में भी नहीं हिचकिचाते थे कि उन्हें देश की स्वतंत्रता का मूल्य अपना खून देकर चुकाना था। उन्हें किसी व्यक्ति को दुखी देखकर कष्ट होता था परंतु राष्ट्रीय स्तर पर त्याग और बलिदान की बात भी जानबूझ कर करते थे। वे खून से सनी दिल्ली जाने वाली सड़क पर अपनी क्रांतिकारी सेना का संचालन करेंगे परंतु जैसे ही उन्हें अपने उद्देश्य में एक बार सफलता मिलेगी वे हिमालय में भगवत भजन के लिए जो उनके जीवन का प्रथम ध्येय था, चले जाएंगे।

उनको पूर्वी एशिया से अदृश्य हुए 26 वर्ष हो गए परंतु अब भी हम उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाए। उनके व्यक्तित्व के ऊपर से विवाद की धूल अभी हटी नहीं है।

प्रसिद्ध विद्वान, आई.एन.ए. सहित भारत की स्वतंत्रता का इतिहास लिखने में व्यस्त हैं। आई एन.ए. में नेताजी प्रमुख व्यक्ति थे। इन प्रसिद्ध इतिहासज्ञों के परिश्रम से नेताजी का वास्तविक व्यक्तित्व निश्चय ही प्रकट होगा।

अध्यात्म अथवा राजनीति में से कौन सुभाष के जीवन में सर्वोपरि था? जब उन्होंने युद्धकाल में स्वयं देश से निर्वासन का पथ चुना तो क्या उन्होंने ऐसा स्वार्थवश किया था? क्या वे जो कुछ कहते थे उसी के अनुसार कार्य करते थे? उनके अदम्य उत्साह एवं वीरता का क्या रहस्य था? यदि जापानी देश को मुक्त कराने में उनकी सहायता करते तो क्या वे उनको भारतीय प्रभुसत्ता के अपहरण से रोक पाते? उनके पास कौन सी शक्ति थी जिससे वे इस परिस्थिति का सामना करते! क्या उन्होंने हिटलर के नाजीवाद और तोजो के सैनिक अधिनायकवाद को बिलकुल स्वीकार नहीं किया था जब उन्होंने उनसे सहायता मांगी और उसे ग्रहण करना स्वीकार किया?

भारत में गांधी और नेहरू के प्रति उनका वास्तविक दृष्टिकोण क्या था? क्या वे स्वतंत्रता की लड़ाई में स्वयं को उनका प्रतिद्वंद्वी समझते थे? यदि वे स्वतंत्र भारत में होते तो क्या वे तानाशाह होना चाहते? ये कुछ प्रश्न हैं जिनको बुद्धिवादी जो सक्रिय राजनीतिक नहीं हैं परंतु जन साधारण संबंधी मामलों के सच्चे शोधकर्ता हैं, पूछते हैं। और इन प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर जानने के इच्छुक हैं!

जो भी कुछ हो सुभाषचंद्र बोस भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में एक समर्पित सैनिक थे और उन्हें अपने भावी लक्ष्य में अडिग विश्वास था। उन्हें भारत के भविष्य के बारे में भी अडिग विश्वास था—"भारत स्वतंत्र होगा और बहुत शीघ्र स्वतंत्र होगा।"

संक्षेप में भारत के इतिहास में सुभाष का सही स्थान क्या है? केवल समय ही इसका निर्णय करेगा।

संदर्भिका

'एन इंडियन पिल्ग्रिम' ले. सुभाष चंद्र बोस (नेताजी रिसर्च ब्यूरो)
'आज़ाद हिंद गवर्नमेंट सिल्वर जुबिली सुवेनिर' (आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन, दिल्ली 1968)
'बुलेटिन आव नेताजी रिसर्च ब्यूरो', नवंबर 9/10, 1968-69 (नेताजी रिसर्च ब्यूरो)
'चलो दिल्ली' ले. एस.ए. दास तथा के.बी. सुबय्याह, कुआलालंपुर, 1946
'फ्रीडम्स बेटिल' संपादक, बिट्ठलदास झावेरी, 1947
'फंडामेंटल क्वस्चन्स आव इंडियन रिवोलूशन' ले. सुभाष चंद्र बोस, संपादक डा. एस. के. बोस (नेताजी रिसर्च ब्यूरो,1970)
'हेराल्ड्स आव फ्रीडम' (प्रकाशन विभाग, भारत सरकार)
'आई.एन.ए.' ले. कुसुम नायर (पद्मा पब्लिकेशंस, 1946)
आई.एन.ए. एंड इट्स नेताजी' ले. मेजर०जनरल शाहनवाज खां (राजकमल प्रकाशन)
'इन फ्रीडम्स क्वैस्ट' ले.एन.जी. जोग (ओरियंट लांगमैंस)
'इंडियन इंडिपेंडेंस मूवमेंट इन ईस्ट एशिया' ले. केसर सिंह मानी (सिंह ब्रादर्स, लाहौर, 1947)
'इंडियन नेशनल आर्मी डिमांड्स जस्टिस' (आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन, दिल्ली, 1967)
'जय हिंद' (जन्मभूमि प्रकाशन मंदिर द्वारा प्रकाशित, 1945)
'भारत के राष्ट्रपति को प्रस्तुत प्रतिवेदन'— संसद सदस्यों द्वारा (आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन, दिल्ली, 1967)
'नेताजी सुभाषचंद्र बोस' ले. टैट्श्यूओ हैशिदा (एलाइड पब्लिशर्स, 1970)
'नेताजी इन जर्मनी' ले. एन. जी. गनपुले (भारतीय विद्या भवन)
'नेताजी इन जर्मनी' ले. अलैक्जैंडर वर्थ तथा वाल्टर हार्बिश (नेताजी रिसर्च ब्यूरो)
'नेताजी इंक्वायरी रिपोर्ट' (भारत सरकार, 1956)
'नेताजी प्रदर्शनी', पोर्ट ब्लेयर, अंडमांन (नेताजी रिसर्च ब्यूरो, 1969)
'नेताजी ऐंड इंडिया टुडे', पचहत्तरवां जन्म दिवस स्मारिका (आज़ाद हिंद फ़ौज एसोसिएशन, दिल्ली, 1971)

'नेताजी फ़ैस्टिवल सुवेनिर, 1971' (नेताजी रिसर्च ब्यूरो)
'सेलेक्टेड स्पीचेज आव सुभाषचंद्र बोस' (प्रकाशन विभाग, भारत सरकार)
'दी स्प्रिंग टाइगर' ले. हग टाय (कैसल, लंदन)
'टू हिस्टारिक ट्रायल्स इन दी रैड फ़ोर्ट' ले. मोतीराम
'अन टू हिम ए विटनस' ले. एस.ए. अय्यर (थैकर ऐंड कंपनी लिमिटेड)
'व्हैन बोस वाज़ जियाउद्दीन' ले. उत्तम चंद्र (राजकमल)